नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 4 अंक 7
अगस्त 2002 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

अनुराग पुस्तकालय
D-68, निराला नगर

संसदीय राजनीति का कोढ़ लगातार फूट रहा है, खून की बारिश में मतदान की फसल उगायी जा रही है

लोगो! यह सब आखिर कब तक झेलोगे? बेबसी छोड़ो! कदम आगे बढ़ाओ!

(सम्पादक)

लखनऊ। पेट्रोल पम्पों के आवंटन में घोटाले के पर्दाफाश के बाद ठीक वही सीन दुहराया जा रहा है जैसा आजकल हर घपले-घोटाले के पर्दाफाश के बाद होता है। पहले सरकार का साफ इनकार... फिर संसदीय विपक्षियों का हो हल्ला... फिर बेहयाई के साथ सवालों के घेरे में आये आवण्टनों को रद्द करना,... विपक्ष की जांच की मांग ... फिर सरकारी पक्ष द्वारा इस मुद्दा में धमकी कि तुम हमें नंगा करोगे तो हम तुम्हें भी नंगा करेंगे... इसलिए 1983 से अब तक हुए सभी पेट्रोल पम्प आवण्टनों की जांच की धमकी... और यह गन्दी, घिनौनी, उबकाई पैदा करने वाली नौटंकी तब तक चलती रहेगी जब तक कि कोई नया घपला-घोटाला उजागर नहीं हो जाता। फिर एक दूसरे की धोती खोलने की क्रिया दुहराई जायेगी। तब तक, जब तक कि फिर कोई नया घपला-घोटाला सामने नहीं आ जाता।

पूंजीवादी राजनीति की चरम पतनशीलता

देश की पूंजीवादी राजनीति के इतिहास पर एक सरसरी नजर दौड़ाने पर हमें यह दिखेगा कि यह बेदाग तो कभी नहीं रही, नेहरू-पटेल के जमाने में भी नहीं, लेकिन इसकी गहराई और फैलाव में पिछले दस-बारह वर्षों में जो इजाफा हुआ है वह पूंजीवादी राजनीति के पतन के एक बिल्कुल नये दौर का सूचक है। यह दौर 1990 के दशक में उदारीकरण निजीकरण की नीतियों के साथ शुरू हुआ है। जिस तरह खुले बाजार की नीतियों ने जनता की क़ानूनी लूट को खुल्लमखुल्ला कर दिया है उसी तरह तमाम क़ानूनों की धज्जियां उड़ाते हुए किसिम-किसिम के घपलों-घोटालों और तरह-तरह की गैरक़ानूनी लूट के लिए भी दरवाजों को खुला कर दिया है।

1991 में नरसिंह राव, मनमोहन सिंह की अगुवाई में कांग्रेस सरकार द्वारा नयी आर्थिक नीतियों को लागू करने के बाद से अब तक कितने घपले-घोटाले गबन हुए हैं उन्हें तो अब याद रखना भी मुश्किल होता जा रहा है। एक घोटाले की खबर सूखने भी नहीं पाती कि दूसरा सुर्खियों में आ जाता है। बोफोर्स घोटाला, शेयर घोटाला, चीनी घोटाला, यूरिया घोटाला, चारा घोटाला, परिवहन घोटाला, वर्दी घोटाला, अलकतरा घोटाला, संचार घोटाला, सांसद रिश्वत काण्ड, यूटीआई घोटाला, रक्षा सौदों की खरीद में घोटाला (तहलका काण्ड), ताबूत घोटाला....।

आगे इस फेहरिस्त में कितने और नाम जुड़ेंगे इस बारे में बड़े-बड़े राजज्योतिषी भी नहीं बता सकते। अगर वे बता सकते तो शायद कोई घोटाला उजागर ही नहीं होने पाता। चुनावी राजनीति का जैसा रंग-ढंग इन दिनों दिख रहा है उसे देखते हुए बस इतनी भविष्यवाणी की जा सकती है कि घोटालों की सूची का कोई अन्त नहीं होने वाला। ठीक 'हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता' की तर्ज पर।

जब राजीव गांधी के शासन में बोफार्स घोटाला उजागर हुआ था तो उस समय वी.पी.सिंह ने सत्ता के शीर्ष पर भ्रष्टाचार मिटाने का मुद्दा बनाकर समाज के भीतर जितनी हलचल पैदा की थी आज किसी घोटाले पर उतनी भी हलचल पैदा करने की कूवत किसी चुनावी दल या नेता में नहीं रह गयी है। पिछले बारह-तेरह वर्षों में यह भी एक नया बदलाव सामने आया है। वीपी सिंह के पास भ्रष्टाचार के कारणों का न तो कोई विश्लेषण था, न ही इसे खत्म करने का कोई कारगर उपाय और सबसे बड़ी बात कि उनकी ऐसी नीयत भी नहीं थी। शीर्ष के भ्रष्टाचार का मुद्दा उनके लिए सिर्फ गाय की पूंछ के समान था जिसे पकड़कर वे चुनावी वैतरणी पार करना चाहते थे। इसके बावजूद अगर लोगों ने वी.पी. सिंह के मुद्दे का समर्थन किया और उस समय सड़क पर उतरने को लोग तैयार दिखे तो इसका कारण यह था कि बोफोर्स घोटाला पूंजीवादी राजनीति की पतनशीलता के नये दौर का पहला आंख खोलने वाला उदाहरण था। पतन की इस गहराई का लोगों को अनुमान नहीं था। साथ ही अभी कांग्रेस के अलावा दूसरी संसदीय विपक्षी पार्टियां अधिक सत्ता सुख नहीं भोग पायी थीं इसलिए उनके दामन पर गहरे दाग नहीं लग पाये थे। ऐसे में कांग्रेसी भ्रष्टाचार के खिलाफ जनता का गुस्सा वी.पी. सिंह और उनके सहयोगियों के समर्थन के रूप में सामने आया था।

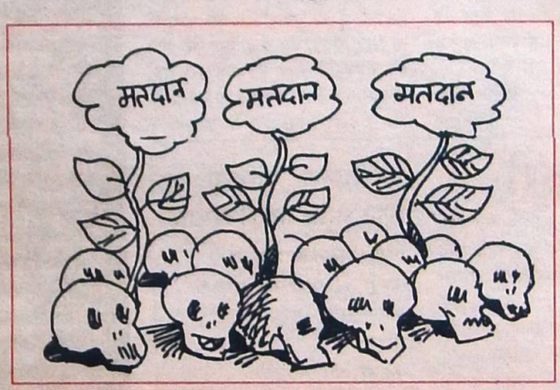

लेकिन उसके बाद तो घोटालों की झड़ी ही लग गयी। एक के बाद एक घोटालों के उजागर होने का नतीजा यह हुआ है कि आज लोगों ने इन पर चौंकना बंद कर दिया है। अब आलम यह है कि संसदीय राजनीति के हम्माम में सब नंगे हो चुके हैं। ऐसे में भ्रष्टाचार सड़क पर कोई मुद्दा बन नहीं पाता। इसलिए तमाम चुनावी नेता ही एक दूसरे की धोती खोलकर-चोटी नोंचकर अपना नंगापन छुपा रहे हैं।

चरम बेहयाई

जब नंगई इतनी जग जाहिर हो जाती है कि किसी तरह छुपाये नहीं छुपती तो बेहयाई पैदा होती है। देश की पूंजीवादी राजनीति आज पतन की इसी चरम अवस्था में पहुंचकर परम बेहयाई की सिद्धावस्था को प्राप्त कर चुकी है। अब लोकलाज का भय पूरी तरह मिट गया है। पेट्रोल आवण्टन के ताजा घोटाले के उजागर होने के बाद भाजपा के आला लीडरों ने यह बयान जारी कर पाप स्वीकार किया कि सत्ता सुख भोगने के कारण भाजपा थोड़ी भ्रष्ट हो गयी है, जिसे साफ़-सुथरा बनाने के उपाय किये जायेंगे।

एक तरफ पाप स्वीकार की यह बेहयाई दिखायी देती है दूसरी तरफ पाप मिटाने के लिए पाप की परिभाषा ही बदल देने की कवायद भी ज़ारी है। अभी हाल ही में 'फेरा' कानून (विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम) को 'फेमा' (विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम) में तब्दील कर देना ऐसी ही कवायद है। 'फेमा' को इतना ढीला बना दिया गया है कि विदेशी मुद्रा की धोखाधड़ी करने

(पेज 10 पर जारी)

भीतर के पन्नों पर

1. एचपीएल इण्डिया के मज़दूर सड़कों पर - पृ 3
2. वी.आर.एस. जबरन सेवा निवृत्ति योजना - पृ 5
3. बचपन तबाह करने वालों का स्वांग- पृ 8
4. गिरगिट -कहानी - पृ 9
5. फ़ूंकवादी सभ्यता और अपराध -कार्ल मार्क्स - पृ 10
6. गरीब जनता पर सूखे की मार-पृ 11

होण्डा का मज़दूर आंदोलन -कुछ ज़रूरी निचोड़, कुछ क़ीमती सबक

(बिगुल प्रतिनिधि)

रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)। पोर्टेबुल जेनरेटर और पम्पसेट बनाने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनी 'होण्डा पावर प्रोडक्ट्स' के मज़दूरों की चार माह तक चलने वाली हड़ताल समाप्त हो चुकी है। एक लम्बे समय बाद तराई क्षेत्र के किसी कारखाने के मज़दूरों ने इतना लम्बा और जुझारू संघर्ष चलाया। पूरे तराई क्षेत्र के मज़दूरों की निगाहें इस आंदोलन पर लगी हुई थीं, क्योंकि होण्डा के मज़दूरों के जुझारू संघर्षों का एक इतिहास रहा है और अतीत में दो-दो बार वे मालिकान और मैनेजमेन्ट को झुकाने में महत्वपूर्ण कामयाबी हासिल कर चुके हैं।

लेकिन इस बार स्थितियां एकदम भिन्न थीं। इस बार का आंदोलन एक ऐसे दौर में शुरू हुआ जब औद्योगिक माहौल मज़दूरों के एकदम खिलाफ है। उदारीकरण-निजीकरण के इस दौर में सरकार की ओर से देशी-विदेशी कारखानेदारों को न केवल मनमानी की खुली छूट बल्कि पूरी मदद भी हासिल है। कोर्ट-कानून पूरी तरह से मालिकों की तरफदारी कर रहे हैं। प्रशासन उनका चाकर बना हुआ है। दूसरी ओर, आजादी के बाद के पूरे समय के दौरान मज़दूर आंदोलन में सबसे अधिक पस्ती, गिरावट और बिखराव का माहौल है। ऐसे समय में होण्डा के मज़दूरों ने एक लम्बी लड़ाई लड़कर अपने जुझारूपन की एक मिसाल पेश की और कई एक मुद्दों पर होण्डा प्रबंधन को पीछे हटने पर भी मजबूर किया, लेकिन अन्ततोगत्वा प्रबंधन अपने मूल मकसद में, शासन-प्रशासन और न्यायपालिका की पूरी मदद से, कामयाब हो गया। रुद्रपुर प्लाण्ट की एल्यूमीनियम मशीन शॉप नोएडा शिफ्ट हो गयी।

जैसा कि पहले भी 'बिगुल' के पन्नों पर उल्लेख किया जा चुका है। एल्यूमीनियम मशीन शॉप प्लाण्ट का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विभाग है। इसकी शिफ्टिंग के पीछे मालिकों की साजिश यह है कि कुछ दिनों बाद रुद्रपुर प्लाण्ट को घाटे में दिखाकर बंद कर दिया जाये, शेष मशीनों को भी किश्तों में शिफ्ट कर दिया जाये। रुद्रपुर प्लाण्ट के मज़दूरों ने लम्बा संघर्ष करके बेहतर वेतन और सुविधाएं हासिल की हैं। आज की स्थिति में, मालिक अन्यत्र वही काम ठेका, दिहाड़ी और कैजुअल मज़दूरों से बहुत कम पगार पर करवा सकते हैं। सरकार ने उन्हें इसकी खुली छूट दे रखी है। एक दूसरा कारण यह भी है कि तराई में कारखाना लगाने के लिए प्राप्त सब्सिडी हड़पने के बाद मालिकान अब प्लाण्ट नोएडा ले जाना चाहते हैं। होण्डा प्रबंधन की इस नीयत को ताड़ने के बाद होण्डा की मज़दूर यूनियन के सामने आंदोलन के रास्ते पर उतरने के अतिरिक्त दूसरा कोई विकल्प नहीं था।

चार महीने लम्बे इस संघर्ष में जिन मज़दूरों ने हिस्सा लिया उन्होंने बेहद जुझारूपन का परिचय दिया और तमाम परेशानियों का सामना किया। उनकी दृढ़ता का ही नतीजा था कि एल्यूमीनियम शॉप से निकाले गये सभी चौंतीस मज़दूरों को वापस लेने के लिए प्रबंधन को बाध्य होना पड़ा।

(पेज 6 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

आवाज दो- हम एक है!

साथियों, मैं एक गरीब किसान का लड़का हूं। हमारे पास गांव में इतनी जमीन है कि सही ढंग से खेती की जाय तो साल भर खाने के लिए हो सकता है। चूंकि समय पर हाथ में पैसा नहीं रहता, इसलिए खेती ढंग से नहीं हो पाती। इसी वजह से मैंने सोचा कि दिल्ली जाकर कुछ पैसा कमा के घर पर दिया जाये, जिससे कि खेती ढंग से हो सके और मां-बाप, छोटे भाई आराम से रह सकें। जब मैं दिल्ली आया तो भटकते-भटकते नोएडा में सेक्टर-6 में अशोक बख्शी की कम्पनी फाईबर टेक इंजीनियर में काम मिला। मुझे बताया गया कि 12 घंटे काम का 60 रुपये दिया जायेगा। काम दिहाड़ी पर होगा, कोई छुट्टी नहीं होगी और सुबह 9 बजे से पांच मिनट भी लेट हुए तो अन्दर नहीं जाने दिया जायेगा। इन सब कानून के बावजूद मैंने दो महीने दस दिन काम किया,फिर निकाल दिया गया।

साथियों, यह समस्या सिर्फ एक धर्मेन्द्र सिंह की ही नहीं, बल्कि लाखों नवयुवकों की है जो घर से परेशान महानगरों की तरफ आते हैं। यहां पर इन पूंजीपतियों द्वारा जमकर शोषण किया जाता है और मज़दूर को बस इतना ही दिया जाता है कि वह किसी तरह जिन्दा रह सके। साथियों, हमारी और जानवरों की जिन्दगी में क्या फर्क है? सुबह घर से काम पर जाओ और फिर रात को नौ बजे लौट कर आओ और सो जाओ। क्या यही जिन्दगी है इन्सान की? नहीं- एक सवाल मेरे दिमाग में बार-बार आता है कि हम बदहाल, बेघर, बरबाद किसान मज़दूर 70 करोड़ के करीब होते हुएभी इन मुट्ठी भर पूंजीपतियों और उनके लग्गू भग्गुओं के सामने चुपचाप अपना सिर नीचा किये उनकी गालियों को सुनते रहते हैं। क्या हम मज़दूरों का यही जन्म सिद्ध-अधिकार है? जानवर की तरह इनके लिए करोड़ों का मुनाफा पैदा करके दो और बदले में रोटी, कपड़ा और मकान के लिए तरसते रहो।

नौजवान और मज़दूर साथियो! अपनी ताकत को पहचानो। तुम वो हो जिसके दम पर यह दुनिया टिकी है। तुम वह ताकत हो जो इस दुनिया को बदल सकते हो। अब तुम सोचोगे कि अगर हम यह सब कुछ कर सकते हैं तो हम फिर तबाह-बर्बाद क्यों हैं? जानते हो सिर्फ इसलिए कि तुम अपने आप को नहीं पहचानते। सिर्फ अपने लिए लड़ते हो। तुम उन तमाम बर्बाद और तबाह लोगों के साथ मिलकर अपने आपको एकता के बंधन में बांधो, जहां पर सिर्फ एक जाति और एक धर्म हो। वह हो-मेहनतकश की। बर्बाद कर दो उन सारी चीज़ों को, जो हमें बर्बाद करने पर तुली हुई हैं, नेस्तनाबूद कर दो। बना दो एक ऐसी दुनिया जिसमें सब कुछ हमारे लिए हो। यह वक्त की आवाज है। इस आवाज के साथ आवाज मिलाकर बोलो- हम एक हैं।

- धर्मेन्द्र सिंह
नोएडा

एकजुट संघर्ष जरूरी

कन्ट्रोल एण्ड स्विच गियर कम्पनी, नोएडा में मज़दूरों ने मैनेजमेण्ट के समक्ष एक मांग पत्र रखा था। लगभग डेढ़ वर्ष के लम्बे अंतराल के बाद भी मज़दूरों से वार्ता करना तो दूर, मैनेजमेण्ट ने मज़दूरों को मिल रही सुविधाओं से भी वंचित कर दिया है। लेकिन मज़दूरों की फौलादी एकता ने सभी कुटिल नीतियों पर पानी फेरने का इरादा कर लिया है, उन्होंने संघर्ष की राह पकड़ी है। जिसे देखते हुए प्रबन्धकों को अपनी गलतियों का अहसास तो है, पर फिर वही कहावत सामने है कि रस्सी जल गई लेकिन बल नहीं गया। वार्ता के लिए तैयार हैं लेकिन 32 सूत्रीय मांग-पत्र को नकारकर शोषण नीति के तहत तैयार प्रोडक्टिविटी स्कीम पर बात करेंगे। मज़दूरों को बेवकूफ समझ रखा है। परन्तु मज़दूरों के हौसले बुलंद हैं। मज़दूरपक्ष ने पुरानी मशीनों का होना, मज़दूरों के स्वास्थ्य में लगातार गिरावट आने, कच्चा माल समय पर उपलब्ध न होने आदि तर्कों को प्रबन्धकों के सामने रखा। लेकिन प्रबन्धक वर्ग तानाशाही एवं शोषण नीति का झंडा ताने हुए है। जबकि उन्हें भली-भांति पता होना चाहिए कि मज़दूर तुम्हारा झंडा इतने गहरे गड्ढे में दफना देगा कि तुम्हें शोषण नीति लागू करने का मौका भी नहीं मिल पायेगा। हमारी सभी साथियों से यहीं अपील है कि मज़दूर हितों के लिए जुझारू एका कायम करें। मज़दूर चाहे नोएडा का हो या किसी अन्य जगह का, उसे समझना होगा कि यह समय किसी मसीहा के इन्तजार करने का नहीं है। यह समय सही सूझबूझ के साथ यथासंभव एकजुट संघर्ष करने का है, क्योंकि पूंजीवाद एक ऐसी व्यवस्था है जो मज़दूर को कभी पनपने नहीं देती।

-प्रदीप भण्डारी
नोएडा

मेहनतकश साथियों के लिए कुछ ज़रूरी पुस्तकें

बिगुल पुस्तिका श्रृंखला
कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा- लेनिन (5/-)
मकड़ा और मक्खी -विल्हेल्म लीब्कनेख्त (2/-)
ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके -सर्जी रोस्तोवस्की (2/-)
अनवश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं (10/-)
समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति (12/-)

बिगुल विक्रेता साथी से मांगें या इस पते पर 17 रुपये रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें : जनचेतना, डी-68, निरालानगर, आईटी चौराहा, लखनऊ

होण्डा श्रमिक संघर्ष एक-मजबूत आन्दोलन

हर आन्दोलन का अपना एक मुकाम होता है। चाहे वह किसान आन्दोलन हो, छात्र आन्दोलन या मज़दूर आन्दोलन हो। आंन्दोलन की लघु या दीर्घ जैसी सीमा नहीं होती। मुख्य रूप से अन्याय, शोषण-उत्पीड़न के कारण ये पैदा होते हैं तक सीमा एक जाकर ये समझौते समाधान में तब्दील हो जात हैं आन्दोलन में एक तरफ होता है सर्वहारा वर्ग जिसके साथ होते हैं भूखे प्यासे, भयभीत, आशंकित लोग। दूसरी तरफ होते हैं धन कुबेर शासक वर्ग।

पिछले दिनों रुद्रपुर के होण्डा पावर प्रो. लि. के श्रमिकों का लम्बा संघर्ष समाप्त हो गया। एल्युमीनियम प्लांट के स्थानान्तरण को लेकर चले इस दीर्घ कालीन आन्दोलन ने क्षेत्रीय मज़दूर आन्दोलनों में एक ऐतिहासिक घटना के रूप में दर्ज होने का गौरव प्राप्त कर लिया है। इस आन्दोलन द्वारा सर्वहारा वर्ग में संघर्ष और आपसी सहयोग की एक मिसाल प्रस्तुत की है। एक ओर जहां तराई-भाबर क्षेत्र की दूसरी फैक्ट्रियों में चल रहे मज़दूर आन्दोलन, नेतृत्व के अभाव नेतृत्व के लापरवाही पूर्ण व्यवहार, मज़दूर एकता की कमी व उनकी आपसी फूट या प्रबन्ध तंत्र की कुटिल नीतियों आदि के कारण अल्प समय में औंधे मुंह लेटने को बाध्य हो रहे हैं।

वहां होण्डा श्रमिकों द्वारा क्षेत्रीय सर्वहारा वर्ग आम आबादी व मज़दूरों के आपसी सहयोग के दम पर विपरीत हालातों में भी प्रबन्ध तंत्र को समझौते के लिए विवश कर देना, क्या यह जीत की ही कड़ी नहीं है? वह भी तब, जबकि मात्र 253 मज़दूर (जो कि प्रबंध तंत्र के लिए महत्वहीन संख्या हो) न सिर्फ प्रबंधतंत्र से बल्कि उन्हीं की भाषा बोल रहे शासन प्रशासन से लेकर न्यायालय ने भी 'न्याय' की जगह उनके खिलाफ गलाघोंटू फैसला सुनाकर अपना असली चेहरा उजागर कर दिया है।

स्थानीय पुलिस प्रशासन की मध्यस्थता में होण्डा श्रमिक संगठन तथा होण्डा पावर प्रो.लि. के मध्य 6 मजदूरों की बहाली व एल्यूमीनियम प्लांट की शिफ्टिंग की मांग पर गत दिनों समझौता हो गया। इस समझौते को एक लाइन में 'बेताल फिर उसी डाल पर' की संज्ञा दी जा सकती है। शिफ्टिंग रोकने की मांग को लेकर शुरू हुआ यह आन्दोलन 'शिफ्टिंग होगा' के समझौते पर समाप्त हो गया। सामान्य दृष्टिकोण से देखने पर यह लग सकता है कि 100 से अधिक दिनों तक चले इस आंदोलन का समापन मज़दूरों के हित में नहीं रहा। परन्तु इसकी सबसे बड़ी जीत व भविष्य के लिए समाहार यह रहा कि मज़दूर आपसी एकता व जुझारूपन से अपने अधिकार हासिल कर सकता है। इस आन्दोलन से धन मद में चूर प्रबंधक वर्ग को मज़दूर वर्ग के आगे घुटने टेकने पर बाध्य होना पड़ा। शिफ्टिंग के लिए अकूत धन बहाने वाले प्रबंधक वर्ग को यह धारणा त्यागने पर मजबूर होना पड़ा कि शिफ्टिंग उसका एकाधिकार है। वह यह समझ गया कि मजदूरवर्ग की सहमति के बिना स्थानान्तरण की योजना को क्रियान्वित करना संभव नहीं है।

'घन घमंड गर्जत घनघोरा' की तर्ज पर आवाज बुलंद करने वाले विदेशी धन कुबेर के अविवेकी प्रबंध तंत्र को मज़दूर एकता व क्षेत्रीय सर्वहारा वर्ग के सहयोग के आगे कम पापड़ नहीं बेलने पड़े हैं। स्थानीय प्रशासन से लेकर न्यायालय तक अपने पूंजीवादी नाटकों के माध्यम से श्रमिकों के मनोबल को तोड़ने की साजिश करने वाला प्रबंध तंत्र किसी जादुई चिराग के कारण समझौते के लिए बाध्य नहीं हुआ है। उसकी इस मजबूरी के पीछे था मज़दूरों का अटूट संकल्प व क्षेत्रीय मज़दूरों की इन मज़दूर साथियों के साथ भाईचारे की भावना। इसका श्रेय होण्डा मज़दूर संगठन के श्रमिक। भाइयों के साथ-साथ उन सभी लोगों को जाता है। जिन्होंने इस आन्दोलन को अपनी क्षमता के अनुसार न सिर्फ सहयोग दिया वरन मज़दूरों की हिम्मत को टूटने नहीं दिया। ट्रेड यूनियन आन्दोलनों में समझौता आम शब्दावली है। मज़दूर के हक में कम या ज्यादा लाभप्रद समझौते होते रहते हैं। होण्डा या क्षेत्र के अन्य

(पेज 4 पर जारी)

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

बिगुल यहां से प्राप्त करें

▶ शहीद पुस्तकालय, डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, मर्यादपुर, मऊ ▶ मौर्या बुक स्टाल, सआदतपुरा (निकट रोडवेज), मऊनाथभंजन, मऊ ▶ जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर ▶ विजय इन्फारमेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टेशन, गोरखपुर ▶ विश्वनाथ मिश्र, नेशनल पी.जी. कालेज, बड़हलगंज, गोरखपुर ▶ जनचेतना, डी 68, निरालानगर लखनऊ ▶ जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के पास, हजरतगंज, लखनऊ, (शाम 5 से 8·30) ▶ राहुल फाउण्डेशन, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ ▶ विमल कुमार, बुक स्टाल, निकट नीलगिरि काम्प्लेक्स, ए ब्लाक, इंदिरानगर, लखनऊ ▶ विजय कुमार, 55/3, E.W.S. आवास विकास, रुद्रपुर (ऊधमसिंहनगर) ▶ प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, विश्वनाथ मंदिर गेट, बी.एच.यू. वाराणसी ▶ राजीव वर्मा स्टूडेण्ट एजुकेशनल सेंटर, मैनाताली (पुलिस चौकी के पास), मुगलसराय, जिला-चन्दौली ▶ राजेन्द्र प्रसाद, रेणु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, सोनभद्र ▶ सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार-फेज-1, दिल्ली ▶ ललित सती, एल.आई.सी., फैज रोड शाखा, दिल्ली ▶ नई किरण पुस्तक भंडार, एफ-56, हरकेश नगर, ओखला, नई दिल्ली ▶ डी. के. सचान, एस.एच.- 272, शास्त्रीनगर गाजियाबाद ▶ सुनील कुमार सिंह, सेक्टर-12 बी, 3159, बोकारो इस्पातनगर, बोकारो ▶ गणपतलाल, ग्राम काजी रसूलपुर, पो- तेघड़ा, बेगूसराय ▶ पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, पटना ▶ विमर्श, 22, स्वास्तिक काम्प्लेक्स, रसल चौक जबलपुर ▶ नरभिन्दर सिंह, द्वारा डा. सुखदेव हुन्दल, ग्रा/पो. सन्तनगर, जिला-सिरसा ▶ पंकज, प्लाट नं. 33, सेक्टर-15, सोनीपत (हरियाणा) ▶ सुखविंदर द्वारा कॉ0 दशरथ लाल, मकान नं. 14, लेबर कॉलोनी, गिल रोड, लुधियाना (पंजाब) ▶ राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मंदिर, प्रधान नगर, सिलीगुड़ी, दार्जीलिंग ▶ बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता ▶ विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवनपथ, बुटवल, रुपनदेई, नेपाल ▶ विशाल पुस्तक सदन, बिजुवार बाजार, प्यूठान राप्ती अंचल ▶ विशाल पुस्तक पसल, अस्पताल लाइन, बुटवल, लुम्बिनी, नेपाल

एच.पी.एल.इण्डिया के मज़दूर सड़क पर ठेले गये

(बिगुल संवाददाता)

नोएडा। एचपीएल इण्डिया लिमिटेड, (हैवेल्स) डी-392-सेक्टर-10, नोएडा के मालिकान भी छंटनी पर आमादा हो गये हैं। नोएडा जैसे औद्योगिक शहर की ये कोई नयी घटना नहीं है बल्कि यह तो रोज-रोज ही किसी न किसी फैक्ट्री-कारखाने में हो रहा है। वैसे तो मज़दूरों की तबाही का नया सिलसिला 1990 से ही जारी है लेकिन जबसे पूंजीपति-सरकार-पुलिस एकदम खुले रूप में तीन दिल एक जान हुए हैं तबसे तो गिनना ही मुश्किल हो गया है कि कब कहां छंटनी हो रही है, तालाबन्दी हो रही है, ठेके पर कंपनी जा रही है।

अगर हम ताजा घटनाओं की ही बात करें तो मुश्किल से तीन महीने के अन्दर सेक्टर 3 स्थित ईएसआईलि. , फेज- 1 पर स्थित मोनिका इलेक्ट्रानिक्स, कण्ट्रोल्स एण्ड स्विचगेयर, बजाज कारपेट कासना स्थित सीडीएल समेत कई फैक्ट्रियों में तालाबन्दी, छंटनी, परमानेण्ट निकालकर ठेके पर भर्ती, सस्पेंशन, टर्मिनेशन हुआ है,हो रहा है या होने वाला है।

इसी की अगली कड़ी है नोएडा फेज- 1 की एक और फैक्ट्री एचपीएल इण्डिया लिमिटेड। कंपनी द्वारा पिछले तीन अगस्त से 39 मज़दूरों को कारखाने के गेट पर रोक दिये जाने के बाद अंदर लिये जाने की मांग को लेकर वे धरने पर बैठे हुए हैं। मज़दूरों की यह मांग है कि बिना किसी शर्त के तत्काल उनको काम पर वापस लिया जाय।

इस संवाददाता से बातचीत के दौरान मज़दूर प्रतिनिधियों ने बताया कि 30-07-2002 को जब सभी मज़दूर काम पर आये तो कंपनी ने सभी को गेट पर रोक दिया। मज़दूरों को एक कागज पकड़ाया जा रहा था जिस पर दस्तख़त करने के बाद अंदर जाने की बात कही गयी। जब मज़दूरों ने यह चिट्ठा पढ़ा तो उस पर लिखा था कि आप किसी तरह की यूनियनबाजी नहीं करेंगे, जो कंपनी देगी वह आप बिना किसी सवाल-जवाब के रखेंगे। साथ ही यह भी लिखा था कि कंपनी के पास यह अधिकार सुरक्षित है कि जब चाहे वह मज़दूरों को बाहर कर दे। इस पत्र को देख मज़दूर बौखला गये और उस कागज पर दस्तख़त करने से इंकार कर दिया।

इसके बाद कंपनी ने किसी भी मज़दूर को अन्दर नहीं जाने दिया। कंपनी में कुल 42 परमानेन्ट मज़दूर हैं जो 10-12 साल से काम कर रहे हैं। इनमें से 39 को अंदर नहीं जाने दिया गया। इतना ही नहीं मज़दूरों ने बताया कि कंपनी ने तीन मज़दूरों को पहले से ही बिना किसी जांच-निलम्बन के सीधे टर्मिनेट कर रखा है, जबकि कंपनी शांतिपूर्वक चल रही थी।

डी- 392, सेक्टर-10 की यह कंपनी बिजली के फ्यूज, स्विच, इलेक्ट्रिकल एचआरसी फ्यूज, रॉडरी स्विच बनाती है। एचपीएल ग्रुप की एक और फैक्ट्री ए-27, सेक्टर-9 नोएडा में भी है। इसके अलावा गुड़गांव, दिल्ली आदि में भी इसकी फैक्ट्रियां है। इसके स्विच विशेषकर फ्रांस, डेनमार्क, जर्मनी को निर्यात होते हैं। इस कंपनी का मालिक ललित सेठ है।

गेट पर रोक रखने के खिलाफ मजदूरों ने डीएलसी, डीएम-सिटी मजिस्ट्रेट आदि को भी अवगत करा रखा है। लेकिन इन आला अधिकारियों ने अब तक दो ही काम किया हैं या तो उन्होंने मजदूरों को हड़काया या फिर मेंढक की तरह टांग चियार दिया। अब तक डीएलसी के यहां दो तारीख पड़ चुकी है लेकिन एक बार भी मैनेजमेंट नहीं पहुंचा। वहीं दूसरी तरफ वह पैसा देकर पुलिस वालों से डरा-धमकवा रहा है।

कुल मिलाकर यह कि कंपनी के मालिकान बहाना ढूंढकर परमानेण्ट मज़दूरों को निकालना चाहते हैं। ठेके पर कंपनी को देकर और मुनाफा कमाना चाहते हैं। सीधे-सीधे मालिकान का यही मकसद है, और कुछ नहीं। ये सब काम उनके लिए अब और आसान होता जा रहा है क्योंकि मज़दूरों को लूटने के लिए सरकार और पूंजीपति पार्टनर हो गये हैं इसलिए साथियों ये सिर्फ हैवेल्स (एचपीएल इण्डिया) में नहीं हुआ है। बल्कि देश भर में यही हो रहा है। अत: यह लड़ाई अब अकेले-अकेले मालिकों के खिलाफ नहीं रह गई है। बल्कि मालिकानों के पूरे गिरोह के खिलाफ हो गई है। इसलिए साथियों हम लोगों को अकेले-अकेले लड़ने के बजाय एकजुट होकर लड़ना होगा। दूसरे भाई जो सो रहे है उनको इस हालात से आगाह कराना होगा। हम लोगों के सामने एक बार फिर चुनौती आ गई है। यदि सरकार-व्यवस्था-पूंजीपति-माफिया-नेता हमको सब मिलकर नोचने-चोंथने की तैयारी कर रहे हैं तो हम लोगों को एक होना ही होगा। उसके आन्दोलन से हमें क्या मतलब? हमारी फैक्ट्री में जब होगा तो देखेंगे वाली मानसिकता को छोड़कर एक होकर छोटी-मोटी लड़ाई हारते-जीतते हुए एक बड़ी लड़ाई की तैयारी में जुट जाना होगा। तभी हम लोग इस लूट से मुक्त हो पायेंगे।

सुरती हौज़री (सुन्दर नगर, लुधियाना) के फ्लैट कारीगरों की शानदार पहलकदमी

औद्योगिक नगरी लुधियाना इन दिनों मंदी की चपेट में है। पहले यह मंदी साल में कुछ महीने चलती थी, मगर अब यह साल भर ही रहने लगी है। इस मंदी का सबसे बुरा असर यहां के मज़दूरों पर ही पड़ रहा है। कभी काम मिलता है कभी नहीं। खुराकी और कमरे का किराया देने की चिंता हर वक्त मज़दूरों को सताती रहती है। मज़दूरों की खून-पसीने की कमाई से तो मालिकों की तिजोरियां हर दम भरी रहती हैं, उनके लिए मंदी हो या तेज़ी उनकी अय्याशी में कभी कोई कमी नही होती है। मगर मंदी के बहाने उनके खूनी पंजे मज़दूरों की रोज़ी-रोटी पर जरूर झपटते हैं। लुधियाना में हौज़री उद्योग इन दिनों अस्त-व्यस्त है। यहां पर मालिक काम के घंटे बढ़ा रहे हैं और मज़दूरी घटा रहे हैं।

लुधियाना में सुंदर नगर के सुरती हौज़री में पीस रेट सिस्टम चल रहा है। मालिक ने मंदी के बहाने रेट बहुत कम कर दिया है जिसके चलते यहां से मज़दूर काम छोड़ कर भाग रहे हैं। मगर व्यापक बेरोजगारी के चलते यहां से मज़दूरों की कभी कमी महसूस नहीं होती। सुरती हौज़री के मालिक ने फ्लैट चलाने वाले करीब 70 कारीगरों में से 15 कारीगरों का रेट 35 रुपये प्रति पीस से घटाकर 30 रुपये कर दिया। मगर इन मज़दूरों ने काम छोड़कर भागने की बजाय अपने हक के लिए लड़ना बेहतर समझा। उन्होंने अपना केस अन्य फ्लैट मज़दूरों के सामने रखा। बाकी मज़दूरों ने अहसास किया कि अगर आज इन 15 मज़दूरों का रेट कम हुआ तो बाकी मज़दूरों का भी कम होगा। मज़दूर मालिक की 'बांटो और राज करो' की साजिश को समझते हुए एकजुट सभी फ्लैट कारीगरों ने काम बंद कर दिया। पूरा दिन काम बंद रहा। दूसरे दिन भी मज़दूर काम पर नहीं गये। मालिक को मजबूर होकर रेट तीन रुपये बढ़ाना पड़ा। मगर रेट अभी भी कम था। कुछ दिनों बाद फिर से मज़दूरों ने काम बंद दिया और मालिक को रेट एक रुपये और बढ़ाना पड़ा।

सुरती हौज़री के मज़दूरों की यह एक छोटी मगर शानदार जीत है। लुधियाना जैसे औद्योगिक नगर में यहां पर ट्रेड यूनियन आंदोलन का नाम निशान तक नहीं है। सुरती मज़दूरों के जागरूक हिस्से का यह फर्ज बनता है कि स्वत:स्फूर्त ढंग से बनी इस एकता को संगठित किया जाये क्योंकि मालिक बार-बार मज़दूरों के हकों पर झपटेंगे। मज़दूरों की फौलादी एकता ही मज़दूरों को मालिकों के हमलों से बचा सकती है।

नागेन्द्र, लुधियाना

दयानंद मेडिकल कालेज एवं अस्पताल (डी.एम.सी.एच.) के कर्मचारियों का संघर्ष

बर्बर पुलिस अत्याचारों के बाद भी आंदोलन जारी

(बिगुल प्रतिनिधि)

उत्तर भारत की नामी स्वास्थ्य संस्था दयानंद मेडिकल कालेज एवं अस्पताल (डी.एम.सी.एच.) से लगभग तीन हजार कर्मचारी पिछले लम्बे समय से अपने हक अधिकार के लिए लड़ते आ रहे हैं। डी.एम.सी.एच का मैनेजमेन्ट जिसका कंट्रोल हिन्दुस्तान के एक बड़े औद्योगिक घराने हीरो ग्रुप के हाथ में है, भी तरह-तरह की चालों से कर्मचारियों की क्षमता को तोड़ने के प्रयत्न करती रहा है। मगर डी.एम.सी.एच. के बहादुर कर्मचारी, मर्द एवं महिलाएं,अपनी जुझारू जत्थेबंदी डी.एम.सी.एच. इम्प्लाइज यूनियन के कुशल नेतृत्व में हर बार मैनेजमेन्ट के दांत खट्टे करते रहे हैं। अभी पिछले साल ही दिसम्बर 2001 में यहां के कर्मचारियों ने लम्बी हड़ताल की थी, जिसमें वह अपनी कई मांगें मनाने में कामयाब हुए थे।

मगर कर्मचारियों की एकता से तंग-परेशान मैनेजमेन्ट भी अंदर ही अंदर विष छोड़ती रही है। मुनाफे की हवस में अंधा हुआ हीरो ग्रुप कर्मचारियों को संघर्षों से अर्जित सुविधाओं को छीन लेना चाहता है। वह अस्पताल में भी कर्मचारियों से उसी तरह कम तनख्वाह पर कमर तोड़ काम लेना चाहता है, जिस तरह उसके अन्य कारखानों में मज़दूर काम कर रहे हैं। इसीलिये हीरो हर्ट इंस्टीच्यूट बनवाया। यहां पर ठेके पर कर्मचारियों को भर्ती करना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे 'दयानंद' से कई बार में हीरो हर्ट इंस्टीच्यूट में शिफ्ट करना शुरू कर दिया। 'दयानन्द' के कर्मचारियों ने खतरे को समय पर ही भांप लिया। अपनी रोजी-रोटी तथा रोजगार सुरक्षा पर मंडराता खतरा देख लिया।

मैनेजमेन्ट का कहना है कि एच.एच.आई. 'दयानंद' का हिस्सा नहीं है। इसलिए वहां के नियम क़ानून 'दयानन्द' से अलग होंगे। जबकि डी.एम.सी.एच. के नियमों के मुताबिक संस्था के अंदर कोई भी डिपार्टमेन्ट साझे तौर पर खोला जायेगा तो वह डी.एम.सी.एच. के अधीन ही होगा तथा पूरी संस्था के नियम क़ानून एक से ही होंगे। हीरो हर्ट इंस्टीच्यूट (एच.एच.आई.) में ठेके पर भर्ती को कर्मचारियों ने महज एक शुरूआत माना, वह समझ गये कि धीरे-धीरे पूरी संस्था में ही यही किस्सा दुहराया जाएगा। इसलिये 'दयानंद' के कर्मचारियों ने 10 मई से अपना आंदोलन शुरू भी कर दिया। कर्मचारियों की मुख्य मांग थी कि एच.एच.आई. को 'दयानन्द' का ही हिस्सा माना जाए तथा वहां ठेके के बजाय पक्के कर्मचारी भर्ती किये जाएं। अस्पताल के काम में कोई भी रुकावट डाले बिना हर रोज कर्मचारी 'दयानंद' परिसर में घंटा-दो घंटा धरने पर बैठते थे। मैनेजमेन्ट ने इस बार कर्मचारियों पर बड़ा हमला बोलने की तैयारी की। स्थानीय प्रशासन तथा पुलिस ने भी इस साजिश में मैनेजमेन्ट को पूरा सहयोग दिया। 13 जुलाई के दिन पुलिस को अस्पताल बुलाया गया। पुलिस ने कर्मचारियों को हाईकोर्ट का आर्डर दिखाते हुए परिसर से धरना उठाने को कहा। कर्मचारियों के इनकार करने पर पुलिस तथा कर्मचारियों के बीच हाथापाई शुरू हुई। इसी समय अस्पताल की छत पर से पुलिस पर ईंट-पत्थर बरसने लगे। जिसमें कई पुलिस वाले घायल हुए। लुधियाना में कई संगठनों का मानना है कि छत पर से पत्थर बरसाने वाले मैनेजमेन्ट के ही आदमी थे। इस पथराव के बाद बड़ी तादाद में पुलिस 'दयानंद' पहुंची तथा कर्मचारियों को बेतहाशा पीटने लगी। यहां तक कि पुलिस ने डाक्टरों, अस्पताल में भर्ती मरीजों के तीमारदारों को भी नहीं बख्शा। कैंटीन पर काम करने वाले मज़दूर, टैक्सी ड्राइवर, अस्पताल के आस-पास के दुकानदार, आस-पास के मुहल्लों में रहने वाले भी पुलिस के अत्याचारों के शिकार हुए। पुलिस के अत्याचारों से गंभीर रूप में जख्मी हुआ एक कर्मी 17 दिनों तक मौत से लड़ने के बाद दम तोड़ गया।

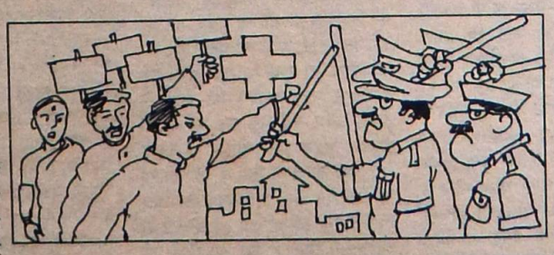

पुलिस अत्याचारों को चुपचाप झेलने की बजाय कर्मचारियों, मर्द तथा महिलाओं ने पुलिस का जमकर मुकाबला किया। सिर से पांव तक हथियारबंद पुलिस को कई बार कर्मियों के जबर्दस्त प्रतिरोध के चलते भागना पड़ा।

इस नादिरशाही के बाद पुलिस ने करीब 70 कर्मचारियों को गिरफ्तार किया। थाने में ले जाकर महिला कर्मियों सहित सभी से बुरी तरह मारपीट की। कई कर्मचारी बाद में धारा 307 जैसे खतरनाक केस बनाकर जेल भेज दिये गये।

मगर इन तमाम अत्याचारों के बावजूद कर्मचारी डटे हुए हैं। उनका संघर्ष थमा नहीं है, उनके संघर्षों को व्यापक जनसमर्थन मिल रहा है। लुधियाना तथा आस पास की दर्जनों ट्रेड यूनियनें उनके साथ आ खड़ी हुई हैं। इस जनसमर्थन से कर्मियों के हौसले बुलंद हैं। 13 जुलाई से अस्पताल पूरी तरह बंद पड़ा है। मैनेजमेन्ट ने बार-बार इसे चलाने की कोशिश की, लेकिन हर बार उसे मुंह की खानी पड़ी। 'दयानंद' के डाक्टर तथा अध्यापक भी काम बंद कर खुलकर कर्मियों के साथ आ खड़े हुए हैं। इससे कर्मचारियों के संघर्ष को और भी मजबूती मिली है।

ठेकेदारी सिस्टम के खिलाफ संघर्षरत कर्मचारियों पर हुआ बर्बर अत्याचार यह दिखाता है कि निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों को लागू करने के लिए पुलिस प्रशासन, सरकारें तथा कोर्ट आज सरेआम पूंजीपतियों के हक में खड़ी है। यह संघर्ष दिखाता है कि इन नीतियों के खिलाफ उठने वाले जनसंघर्षों से देश के हुक्मरान किस तरह से निपटेंगे। सिर्फ और सिर्फ मेहनतकशों की फौलादी एकजुटता से ही हुक्मरानों के जनविरोधी कदमों से टक्कर ली जा सकती है।

मज़दूरों के रहे-सहे अधिकारों को छीनने की तैयारी मुकम्मल

(बिगुल संवाददाता)

उदारीकरण के इस दौर में मज़दूर आबादी पर जो सबसे बड़ा हमला बोलने की तैयारी विगत चार-पांच वर्षों से चल रही है, वह है लम्बे संघर्षों के दौरान अर्जित श्रम क़ानूनी अधिकारों को मज़दूरों से

छीनकर मालिकों के अनुकूल बनाने की। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से लेकर देशी पूंजीपतियों तक में इसे जल्द से जल्द बदलने के लिए छटपटाहट बढ़ रही है। मज़दूरों के दबाव और किसी विस्फोटक स्थिति की आशंका से ग्रसित भाजपा नेतृत्व वाली राजग सरकार इसे लागू करने के चोर दरवाजों की तलाश करती रही है। इसी क्रम में वह ट्रेड यूनियन एक्ट 1926 और ठेका श्रमिक एक्ट 1972 में संशोधन कर भी चुकी है।

लेकिन सबसे अहम परिवर्तन तो लचीलेपन के नाम पर 'हायर एण्ड फायर' की उस नीति को लागू करना है जिसके तहत मालिकों को यह अधिकार मिल जाए कि वे जब चाहें किसी को काम पर रखें और जब चाहें निकाल बाहर करें।

इस प्रक्रिया में अभी पिछले दिनों तीन घटनाएं घटित हुई हैं। पहला, श्रम मंत्रालय खांटी भाजपाई साहिब सिंह वर्मा को सौंपा गया है, दूसरे चिर प्रतीक्षित दूसरे राष्ट्रीय श्रम आयोग ने अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंप दी है, जिसे अभी गोपनीय रखा गया है तथा तीसरे एक्सेंचर नामक संस्था ने अपनी एक रिपोर्ट पूंजीपतियों की महत्वपूर्ण संस्था फिक्की को सौंपी है। दोनों रिपोर्ट कमोबेश एक ही राग अलापती दिखती हैं- जैसे भी हो मज़दूरों के अधिकार छीन कर उन्हें पूंजीपतियों का औजार बना दो, ताकि उनके मुनाफे की अंधी हवस बेलगाम हो जाए। इन रिपोर्टों की बानगी से ही सच्चाई सामने आ जाती है।

दूसरे राष्ट्रीय श्रम आयोग की रिपोर्ट: "काम के घंटे बढ़ाओ, छुट्टियों में कटौती करो"

वैसे तो दूसरे राष्ट्रीय श्रम आयोग की रिपोर्ट अभी प्रकाशित नहीं हुई है लेकिन आयोग के अध्यक्ष के जो बयान कुछ समाचारपत्रों में प्रकाशित हुए हैं वे ही पूरे रिपोर्ट की वास्तविकता को उजागर कर देते हैं।

आयोग इस बात पर तो जोर देता ही है कि मालिकों को मज़दूरों को काम से हटाने और ठेका मज़दूरों से ज्यादा से ज्यादा काम लेने की खुली छूट मिले। इसके साथ ही आयोग ने यह भी सिफारिश की है कि दैनिक काम की समय सीमा को मौजूदा 8 घंटे से बढ़ाकर 9 घंटे कर दी जाए और वार्षिक छुट्टियों में कटौती की जाये। आयोग का मानना है कि मज़दूरों को वर्षभर में महज तीन राष्ट्रीय पर्वों की छुट्टियां यानी 15 अगस्त, 26 जनवरी व 2 अक्टूबर ही दी जाएं। यही नहीं आयोग यहां तक कहता है कि यह छुट्टियां भी जिस सप्ताह में पडे, उसमें साप्ताहिक छुटटी न दी जाए।

अब से डेढ़ सौ साल पहले दुनिया के मज़दूरों ने जिस आठ घण्टे काम की मांग को लेकर लम्बे संघर्ष किये, कुर्बानियां दीं, जिसने मज़दूरों के अन्तर्राष्ट्रीय त्यौहार 'मई दिवस' को जन्म दिया, आज उसे भी क़ानूनी तौर पर खत्म करने की कवायद शुरू हो गयी है।

आयोग की पूरी रिपोर्ट मज़दूरों के लिए कितनी घातक होगी इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय संस्था एक्सेंचर ने भी "लचीलेपन" की मांग की

प्रबंधन व तकनीकी सेवाओं के क्षेत्र में सक्रिय अन्तर्राष्ट्रीय संस्था एक्सेंचर ने भारतीय श्रम कानूनों में बदलाव के लिए अपनी एक रिपोर्ट पूंजीपतियों की शीर्ष संस्था 'फेडरेशन ऑफ इंडियन चैंबर्स ऑफ कामर्स एण्ड इण्डस्ट्रीज' (फिक्की) को सौंपी है। गौरतलब बात यह है कि यह रिपोर्ट कुछ ही दिनों के अंतराल पर फिक्की को सौंपी है।

रिपोर्ट के अनुसार 'भारत को अपना निर्यात बढ़ाने के लिए नवीनतम तकनीक के साथ उत्पादन करने की कोई जरूरत नहीं है। दुनिया में औद्योगिक उत्पादन में लगी कम्पनियां सस्ते मजदूरों की तलाश में अपना उत्पादन का ठिकाना लगातार बदल रही हैं। भारत में ऐसी क्षमता है कि वह इस बदलाव के बड़े हिस्से को अपने यहां आकर्षित कर सकें'।

मतलब एकदम साफ है। भारत में पहले से ही सस्ते श्रम को और ज्यादा सस्ता कर दिया जाये ताकि दुनिया के नरभक्षी लुटेरे यहां के मज़दूरों के शरीर से बचे-खुचे खून को और तेजी से निचोड कर ज्यादा से ज्यादा मुनाफा पीट सकें। रिपोर्ट बड़े ही गहन अध्ययन व बेशर्मी के साथ यहां तक कहती है कि यहां की 60 करोड़ की कार्यशील आबादी (यानी जिसे निचोड़ा जा सकता है) के 75 प्रतिशत लोग मध्य स्कूल दर्जे तक ही शिक्षित हैं।

एक्सेंचर की रिपोर्ट के अनुसार दुनिया के 1500 अरब डालर के बाजार में भारतीय हिस्सेदारी बढ़ाने के लिए यहां के श्रम क़ानूनों में बदलाव जरूरी है। उसके मुताबिक 'भारतीय श्रम कानूनों का अलचीलापन एक फलता-फूलता औद्योगिक वस्तु निर्माण क्षेत्र विकसित करने में मुख्य बाधा है।' इसलिए 'नियोक्ताओं (मालिकों) को इस बात की छूट हो कि वे जब चाहें किसी को भी काम से हटा सकें।' साथ ही रिपोर्ट में 'श्रम क़ानूनों को पूरी तरह बदल डालने...' कम्पनियों को जब चाहे तुरत-फुरत काम हमेशा के लिए बन्द करने' की छूट की सिफारिशें की गयी है।

अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की रिपोर्ट भारतीय औद्योगिक समूह को दी गयी है तो राष्ट्रीय श्रम आयोग की रिपोर्ट सरकार को सौंपी गयी है। दोनों की नीयत एक ही है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष विश्व बैंक विश्वव्यापार संगठन से लेकर देशी पूंजीपतियों तक की भी लम्बे समय से यही मांग रही है। सरकार भी इसे लागू करने के उचित अवसर की तलाश में है। यानी कि मज़दूरों के बचे खुचे अधिकारों को पूरी तरह से छीन लेने की मुकम्मल तैयारी हो चुकी है।

मज़दूर आबादी को भी आने वाले इस गंभीर संकट से जूझने की तैयारी करनी ही होगी। यह बात दिन प्रतिदिन साफ होती जा रही है कि ट्रेड यूनियन संघों-महासंघों और उसके घुटे घुटाए नेतृत्व से कोई उम्मीद करना बेईमानी होगा। व्यापक मज़दूर आबादी को अपना जुझारू, क्रान्तिकारी नेतृत्व पैदा करना होगा और लम्बे संघर्ष के लिए संकल्प बांधना होगा। लेकिन इस लम्बे तैयारी के दौर में शान्त बैठने की जगह मज़दूरों को अपने यूनियनों और महासंघों पर श्रमकानूनों में इन बदलावों के खिलाफ लड़ने के लिए दबाव बनाना होगा।

राज कर रहे क़फनखसोट-मुर्दाखोर

देश में 40 फीसदी आबादी ग़रीबी रेखा से नीचे का जीवन यापन कर रही है। इस श्रेणी में वह आबादी आती है जिसकी ग्रामीण क्षेत्र में प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग व्यय 49.09 रु. तथा शहरी क्षेत्र में 56.65 रुपये से कम है। यानी 40 करोड़ लोगों की वह आबादी जो प्रतिदिन दो रुपये से कम व्यय में जीवन निर्वाह के लिए मजबूर है। देश के औसत भारतीय की दैनिक आय रुपये 29.50 है।

देश की 60 फीसदी आबादी की सालाना आय 6000 रुपये है जबकि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में काम करने वाले 10 हजार मैनेजरों को प्रतिवर्ष 50 लाख रुपये से ज्यादा तनख्वाह मिलती है।

महज ये चन्द आंकड़े ही इस बात का बयान कर रहे हैं कि देश की व्यापक मेहनतकश आबादी लुट रही है, घुट रही है और पिस रही है। और हमारे कथित जनप्रतिनिधि, ऐश्वर्य के टापू बसा रहे हैं, सुख के समुद्र में गोते लगा रहे हैं। क्या देश की भूखी-नंगी जनता को इन ऐशगाहों को ध्वस्त नहीं कर देना चाहिए?

आपस की बात

(पेज 2 से आगे)

औद्योगिक संस्थानों में भी अपनी मांगों को लेकर श्रमिक वर्ग भविष्य में भी आन्दोलनरत होंगे व समझौते भी होंगे।

प्रारंभिक दौर में, संयुक्त मज़दूर मोर्चा में 'शिव की बारात' की तरह शामिल होने वाले संगठनों की हास्यास्पद स्थिति थी। विभिन्न वैचारिक दृष्टिकोणों वाले इन संगठनों को एकता के सूत्र में बांधना भी सरल नहीं था। परन्तु होण्डा श्रमिक आन्दोलन इस प्रयास में सफलता की ओर बढ़ता नजर आया। केवल संगठन ही नहीं वरन उसमें शामिल आम मजदूरों का जो सहयोग मिला, उससे यह महसूस हुआ कि धीरे-धीरे ही सही परन्तु मज़दूरों में वर्ग-चेतना विकसित हो रही है। यह आन्दोलन संयुक्त मज़दूर मोर्चा व उसके घटक दलों के लिए परीक्षा की घड़ी थी। क्योंकि जिस तरह उत्तरांचल प्रदेश के पूंजीवादी गुटों के संगठनों ने बौखलाकर इस आन्दोलन को विफल करने की तमाम कोशिशें की, उससे लग रहा था कि वे आरपार की लड़ाई लड़ने के मूड में थे।

इस आन्दोलन में आन्दोलनकारियों ने धैर्य नहीं खोया यद्यपि प्रबंध तंत्र मज़दूरों को हिंसा के लिए उकसाता रहा। फर्जी मुकदमे दर्ज कर वह उन्हें मानसिक रूप से भड़काने की कोशिश में लगा रहा। परन्तु नेतृत्व की दक्षता व अनुभव ने हिंसा को भड़कने से रोका। 13 जून को श्रमिकों को काम पर वापस लेने के न्यायालय के आदेश के बाद, 6 कर्मचारियों पर झूठे मुकदमे, निष्कासन या जेल भेजने के पीछे प्रबंध तंत्र का निश्चित ही कोई नेक इरादा नहीं था। इसके पीछे आन्दोलन तोड़ने की चालें थी। यह भी दुर्भाग्य की ही बात है कि आन्दोलन के प्रति मीडिया का रुख संतोषजनक नहीं रहा। कुछ 'जनवाद' के परम हितैषी तथा अपने मुंह मियां मिट्ठू बनने वाले मीडिया बन्धु पूंजावादी झटकों से अपने आपको रोक नहीं पाये। पके बैंगन की तरह पूंजीवाद की थाली में जा गिरे। मगर कुछ बन्धु इस उथल-पुथल में भी स्थिर रहे। तथा इस घिनौनी प्रवृति से अपने को अलग रखते हुए प्रेस की आजादी, व न्यायप्रियता को कायम किये रहे। मज़दूर वर्ग को अपनी आवाज जनता तक पहुंचाने के लिए प्रेस मालिकों तक गुहार लगाने की आवश्यकता पड़े, यह स्वतंत्रता के इस युग में अच्छी बात नहीं कही जायेगी। चन्द विज्ञापनों के मूल्य पर जनहितों की उपेक्षा करना, जन संघर्षों को धूमिल करने का प्रयास करना पत्रकारिता का उद्देश्य नहीं है। परख की अपनी-अपनी शैली है अपना-अपना दृष्टिकोण है। ठकुरसुहाती की भावना से दूर रहकर भी यही कहा जाएगा कि होण्डा श्रमिक आन्दोलन प्रेरक आन्दोलन था।

समझौता आम आदमी की इच्छापूर्ति करने में असमर्थ है। आम आदमी कारखाने के किसी अंश के स्थानान्तरण के पक्ष में नहीं था। कारखाने की आर्थिक स्थिति व प्रबंध तंत्र का अड़ियल रुख, दोनों को देखते हुए यह आवश्यक हो गया था कि श्रमिकगण कारखाने को उत्पादन की ओर ले आये। प्रबंध वर्ग इसे पान का खोखा कहकर अपना पल्ला झाड़ने पर उतारू था। आम जनता के हित में भी यही था कि उत्पादन शुरू हो। अपुष्ट समाचार मिले हैं कि श्रमिक वर्ग को प्रबंधन से आश्वासन मिले हैं कि इस प्लांट के एवज में अन्य प्लांट की स्थापना भविष्य में की जायेगी। देखना है कि इस विषय में ऊंट किस करवट बैठेगा, यह भविष्य के गर्त में छुपा है। फिलहाल आम आदमी की अब मज़दूर वर्ग से जुड़ने लगा है, इसी से हमें संतोष करना होगा। लाभ-हानि का गणित नहीं करके मज़दूर आन्दोलनों पर बल देना होगा।

- एक श्रमिक
(खटीमा, ऊधमसिंहनगर)

स्वप्न नगरी का नारकीय जीवन

राजधानी के पूर्वी द्वार से लगी औद्योगिक नगरी नोएडा- पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार से लेकर तमाम क्षेत्रों के ग़रीब नौजवानों की स्वप्न नगरी। क्या वाकई यहां आकर इन नौजवानों का स्वप्न पूरा होता है? यह स्वप्न भी कैसा? यह भयंकर बेरोजगारी के दावानल में किसी तरह जी लेने की इच्छा भर है। यहां आकर मज़दूरी के लिए दर-दर की ठोकरें खाना। विभिन्न सेक्टरों में चप्पलें घिसते रहना। महीनों इस या उस फैक्टरी में काम मांगते रहना। फैक्टरी गेटों पर खड़े गार्डों से दुत्कार सुनना। सौभाग्य से ही कोई सहृदय गार्ड या कर्मचारी मिल जाये जो किसी फैक्टरी का पता बता दे, जिसमें काम मिलने की संभावना हो। कभी-कभी यह ज़रूरी नहीं कि वह मानवीयता के आधार पर ऐसा करता हो, वह लेबर ठेकेदार का एजेंट भी हो सकता है। इतने पापड़ बेलने के बाद कहीं बात बनती भी है तो दिहाड़ी इतनी कम मिलती है कि नोएडा जैसी जगहों पर जीना मुश्किल होता है।

यहां तक तो काम मिलने का सफर, आगे ठगी और यातना का लम्बा दौर चलता है। बाहर काम और मज़दूरी कुछ बताया जाता है अन्दर लिया और दिया कुछ और जाता है विरोध करने पर धक्के मारकर बहार कर दिया जाता है और मज़दूरी भी नहीं दी जाती हैं इन परिस्थितियों में सामान्य नौजवान को अपने गांव कस्बे की तबाह-बरबाद जिंदगी भी अच्छी लगती है। वह वापस लौट जाना चाहता है। मगर जा नहीं सकता। आप सोचेंगे कि क्यों नहीं जा सकता? वह इसलिए नहीं जा सकता कि उसके बूढ़े मां बाप, बीवी-बच्चों की उम्मीद भरी निगाहें लगातार उसका पीछा कर रही होती हैं।

इन स्थितियों को कुछ नौजवान अपनी नियति मान लेते हैं तो कुछ इन कठिन परिस्थितियों में भी लगातार जूझते रहते हैं। यहां आकर जिन्दगी की रफ्तार इतनी तेज होती है कि जिस बात को हम गांव की सुस्त रफ्तार की जिन्दगी में नहीं समझ पाते, वह यहां समझ में आने लगती है। दोस्त और दुश्मन की पहचान हो जाती है। जिन्दगी के इस मोड़ पर यदि मज़दूर अपनी क्षमता को पहचान ले और एकजुट होकर लड़ना सीख ले तो वह मालिकों की दुनिया को तबाह कर सकता है। ऐसे समय में पढ़े-लिखे नौजवानों, वर्ग सचेत बुद्धिजीवियों का फर्ज बनता है कि वे सभा-सेमिनारों की हदों से बाहर आकर मज़दूरों की चेतना को ऊपर उठाने में मदद करें।

-घनश्याम
गाजियाबाद

रपट

भारत-नेपाल जन एकता मंच के सम्मेलन में वक्ताओं ने कहा

नेपाल में आपातकाल और बाहरी हस्तक्षेप का विरोध करो

(बिगुल संवाददाता)

दिल्ली। नेपाल में निरंकुश राजतंत्र की पैरवी कर रहे और उसे मदद दे रहे साम्राज्यवादियों के कुत्सित इरादों का पर्दाफाश हो चुका है। साथ ही, भारत सरकार द्वारा जनतंत्र विरोधी नेपाली राजशाही को सैन्य और आर्थिक मदद देना उसके 'दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र' के दावे की पोल खोल रहा है। ऐसे हालात में जबकि दुनिया के लुटेरे शासक वर्ग नेपाल के राजतंत्र के साथ खड़े हैं, तब सभी सच्चे जन प्रतिनिधियों, जनतांत्रिक ताकतों को एकजुट होकर नेपाली जनता के पक्ष में अपनी आवाज को बुलंद करना होगा। नेपाल में आपातकाल और बाहरी हस्तक्षेप के विरोध और नेपाली जनता की जनतांत्रिक आकांक्षाओं के समर्थन में एकजुट होना होगा। यह बात भारत-नेपाल जन एकता मंच द्वारा आयोजित सम्मेलन में वक्ताओं ने कही। 'नेपाल जनतंत्र बनाम राजतंत्र और बाहरी हस्तक्षेप' विषय पर 3 अगस्त को नई दिल्ली के राजेन्द्र भवन में आयोजित इस सम्मेलन में मंच की तरफ से एक पर्चा भी पढ़ा गया।

'नेपाल की मौजूदा स्थिति पर हमारा दृष्टिकोण' नामक इस पर्चे में आज की परिस्थितियों पर विस्तार से चर्चा करते हुए कहा गया है कि 'भारत नेपाल जन एकता मंच' नेपाल की जनता की जनतांत्रिक आकांक्षाओं का सम्मान और समर्थन करता है। भारत में रहने वाले नेपाली नागरिक अगर अपने देश के जनतांत्रिक आंदोलन के पक्ष में आवाज उठाते हैं तो भारत सरकार उन्हें माओवादी कहकर प्रताड़ित कर रही है। हम इसका विरोध करते हैं। हमने पहले भी नेपाली जनता के सामाजिक और सांस्कृतिक संगठन 'अखिल भारत नेपाली एकता समाज' पर पोटा के तहत लगाये गये प्रतिबंध की निंदा की है और हम फिर अपनी मांग को दुहराते हैं कि इस पर से प्रतिबंध हटाया जाय। हम नेपाल सरकार से अपील करते हैं कि वह आपातकाल समाप्त करे, माओवादियों के साथ बातचीत फिर शुरू करें ताकि देश में शांति स्थापित हो, निर्दोष नागरिकों का कत्लेआम बंद हो और साम्राज्यवादी शक्तियों को घुसपैठ का अवसर न मिले। हम भारत सरकार से अपील करते हैं कि वह नेपाल की राजशाही को दी जा रही सैनिक सहायता फौरन बंद करे। हम नेपाल में किसी भी तरह के बाहरी हस्तक्षेप का विरोध करते हैं क्योंकि हमारी यह दृढ़ मान्यता है कि यह उस देश की जनता पर छोड़ देना चाहिए कि वह किस तरह की शासन व्यवस्था चाहती है।'

सम्मेलन में भारत-नेपाल जन एकता मंच के इस दृष्टिकोण को सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि पंकज सिंह ने प्रस्तुत किया। इसके पश्चात् विभिन्न वक्ताओं ने अपने विचार रखे। वक्ताओं में भाकपा के डी. राजा, आर एस पी के अवनि राय, भाकपा माले के सपन मुखर्जी, फारवर्ड ब्लॉक के देवराजन, लोकतांत्रिक समाजवादी पार्टी के रघु ठाकुर, मानवाधिकार कर्मी चितरंजन सिंह, नेपाली जन अधिकार सुरक्षा समिति के लक्ष्मण पंत, हिन्दी के वरिष्ठ एवं प्रसिद्ध कथाकार कमलेश्वर, कंचन कुमार प्रमुख थे। संचालन जाने माने पत्रकार एवं मानवाधिकार कर्मी आनन्द स्वरूप वर्मा ने किया। सम्मेलन में तमाम बुद्धिजीवियों, संस्कृतिकर्मियों, विभिन्न जनसंगठनों के कार्यकर्ताओं, छात्रों, मज़दूरों ने शिरकत की।

सम्मेलन में विभिन्न वक्ताओं की बातों से यह बात साफ उभर कर आई कि नेपाल की स्थितियां बेहद खतरनाक मोड़ पर हैं। साम्राज्यवाद उसे अपने सैन्य अड्डे के तौर पर तब्दील कर देना चाहता है। नेपाल में हो रहे बाहरी हस्तक्षेप का असर भारत में भी दिखाई दे रहा है। आज भारत में अघोषित आपातकाल जैसी स्थिति बनी हुई है और नेपाली मूल के लाखों लोग भारत में आतंक के साये में जी रहे हैं। नेपाल की जनता के जनतांत्रिक अधिकारों के समर्थन में जब भारत के जनतंत्रप्रेमी नागरिक अपनी आवाज उठाते हैं तो उनकी आवाज को कुचलने की कोशिश की जाती है। जबकि यह तथ्य है कि नेपाली जनता ने हमेशा ही भारतीय जनता के जनतांत्रिक अधिकारों के संघर्ष में मदद की है।

वक्ताओं ने भारत सरकार को आगाह किया कि वह दुनिया के सबसे बड़े आतंकवादी अमेरिकी शासक वर्ग के 'आतंकवाद विरोधी अभियान' में पिछलग्गू बनने से बाज आये। वह नेपाल के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप बंद करे। आतंकराज कायम करके जनता की आवाज को नहीं कुचला जा सकता। दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र कहा जाने वाले देश का शासक वर्ग आज जिस तरह नेपाली राजतंत्र के साथ खड़ा दिखाई दे रहा है और लोकतांत्रिक शक्तियों पर दमन कर रहा है वह अत्यंत शर्मनाक है।

भारत सरकार का फासीवादी चेहरा

अभी 11 जुलाई को 'भारत-नेपाल जन एकता मंच' के कार्यकर्ताओं को दिल्ली पुलिस की विशेष शाखा ने अवैध रूप से उस समय हिरासत में लिया जब वे मंडी हाउस स्थित त्रिवेणी कला संगम में अपनी एक अनौपचारिक बैठक के बाद बाहर आ रहे थे। इस बैठक में नौ भारतीय और चार नेपाली पत्रकार एवं सामाजिक कार्यकर्ता थे। ये लोग तीन अगस्त के सम्मेलन की तैयारी पर बातचीत करने के लिए इकट्ठे हुए थे। अचानक सादे कपड़ों में 20-25 लोगों ने इन्हें चारों तरफ से घेर लिया और जबरन बाहर खड़ी गाड़ियों में बैठाने लगे। गुंडों की तरह व्यवहार करने वाले इन लोगों से जब परिचय पूछा गया तो इन्होंने बस इतना ही कहा कि 'अभी पता चल जायेगा कि हम लोग कौन हैं।' इन सभी भारतीय लेखकों, पत्रकारों और मानव अधिकार कार्यकर्ताओं (पंकज सिंह, डा. अनूप सराया, आनंद स्वरूप वर्मा, गौतम नवलखा, अनिल प्रकाश, अंजनी, सुरेन्द्र प्रताप, सुनील और सुखबीर सिंह) को लोदी रोड थाने के पीछे विशेष शाखा के इमारत में ले जाकर ढाई-तीन घंटे तक बैठाया गया और उनसे तरह तरह के सवाल पूछे गये। मज़दूर नेता पी.के. शाही किसी तरह बच निकले थे और उनके जरिये गिरफ्तारी की खबर सुनकर जब वहां काफी लोग इकट्ठा होने लगे तो पुलिस ने सबको रिहा कर दिया लेकिन चारों नेपाली नागरिकों को रोक लिया। इन चारों लोगों को उसी रात एकदम अवैध तरीके से नेपाल सरकार को सौंप दिया गया।

इससे पहले 3 जुलाई को सरकार ने 'अखिल भारत नेपाली एकता समाज' नामक सामाजिक संगठन पर 'पोटा' के तहत प्रतिबंध की घोषणा की थी।

(भारत-नेपाल जन एकता मंच के एक पर्चे से)

अखिल भारतीय-नेपाली एकता समाज पर प्रतिबंध के खिलाफ जनसभा एवं प्रदर्शन

(बिगुल प्रतिनिधि)

भारतीय लुटेरे हुक्मरानों ने अपने छुटभैये नेपाली हुक्मरानों के साथ यारी से यानी निभाते हुए भारत में रह रहे नेपालियों के सामाजिक संगठन 'अखिल भारतीय नेपाली एकता समाज पर 'पोटा' के तहत प्रतिबंध लगा दिया है। इस प्रतिबंध की घोषणा पिछले दिनों नेपाल के राजा ज्ञानेन्द्र की भारत फेरी के फौरन बाद की गयी। अखिल भारतीय नेपाली एकता समाज भारत सरकार द्वारा रजिस्टर्ड संगठन था और अब सरकार ने एकदम अपना रंग बदलते हुए इसे आतंकवादी संगठन घोषित कर इसे गैरक़ानूनी संगठन घोषित कर दिया।

'पोटा' के बनने पर ही कई क्रांतिकारी संगठनों ने यह शंका जाहिर की थी कि 'आतंकवाद बहाना है, जनता ही निशाना है।' हाल की घटनाओं ने साबित कर दिया है कि किस तरह भारतीय हुक्मराम 'पोटा' का इस्तेमाल धार्मिक अल्पसंख्यकों तथा प्रगतिशील जनवादी संगठनों के खिलाफ कर रहे हैं।

21 जुलाई को लुधियाना के चतर सिंह पार्क में अखिल भारतीय नेपाली एकता समाज पर पाबंदी लगाये जाने के विरोध में लोक संग्राम मंच, लोक संग्राम मोर्चा, नारी संग्राम मंच, नेपाली अधिकार सुरक्षा समिति, नेपाली युवा कम्युनिस्ट लीग, बिगुल मज़दूर दस्ता, स्टील अलमारी वर्कर्स यूनियन, लोक एकता संगठन आदि संगठनों ने एक जनसभा का आयोजन किया। जनसभा में लगभग 500 लोगों ने शिरकत की, जिसमें बड़ी संख्या नेपाली साथियों की थी।

जनसभा को लोक संग्राम मोर्चा के नारायण दत्त, नारी संग्राम मंच की ओर से सुरिंदर कौर, नेपाली युवा कम्युनिस्ट लीग के टी.बी. खत्री, बिगुल मज़दूर दस्ता के सुखविंदर, नेपाली जनयुद्ध की हिमायत में एकबद्धता मंच के संयोजक तारा सिंह, स्टील अलमारी वर्कर्स यूनियन के प्रभाकर तथा लोक एकता संगठन की ओर से गल्लर चौहान ने संबोधित किया। वक्ताओं का कहना था कि भारत सरकार ने बिना कोई ठोस सबूत दिये- जिससे यह साबित होता हो कि अखिल भारतीय नेपाली एकता समाज किन्हीं आतंकवादी गतिविधियों में संलग्न है- संगठन पर प्रतिबंध लगा दिया।

यह प्रतिबंध सिर्फ इस आधार पर लगाया गया है क्योंकि इस संगठन के घोषणापत्र में यह बात दर्ज है कि यह संगठन 'दुनिया में कहीं भी चलने वाले राष्ट्रीय तथा वर्गीय आंदोलनों का समर्थन करेगा, वक्ताओं ने इस प्रतिबंध को जनता के जनवादी अधिकारों पर एक खतरनाक हमला बताते हुए इस पाबंदी को तुरन्त वापस लेने की मांग की। जनसभा के बाद चतर सिंह पार्क से लेकर रेलवे स्टेशन तक मार्च किया गया। रेलवे स्टेशन पर फिर यह जुलूस जनसभा में बदल गया। यहां पर लोक संग्राम मंच के दलविंदर सिंह ने सभा को संबोधित किया। जोशीले नारों तथा भारतीय और नेपाली लुटेरे हुक्मरानों के खिलाफ संघर्ष जारी रखने के साथ यह कार्यक्रम समाप्त हुआ। ऐसे ही कार्यक्रम बठिंडा, मोगा तथा जालंधर में भी आयोजित किये गये।

संसदीय समिति ने कबूल किया वी.आर.एस. जबरन सेवानिवृत्ति योजना है

(बिगुल प्रतिनिधि)

दिल्ली। सच्चाई कभी न कभी सिर चढ़कर बोलती है। यह सच्चाई कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना (वीआरएस) दरअसल जबरन सेवानिवृत्ति योजना है पिछले दिनों संसद की एक स्थायी समिति के सिर चढ़कर बोली। जून के आखिरी हफ्ते में संसद की वित्त संबंधी स्थायी समिति को विनिवेश मंत्रालय (सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों को बेचने वाला मंत्रालय) की अनुदान मांगों से जुड़ी सिफारिश में यह सच्चाई कबूलनी पड़ी है।

समिति ने बाल्को को बेचने के बाद उसके कर्मचारियों की हालत का जिक्र करते हुए कहा है कि ऐसा लगता है कि नये प्रबंधन ने ऐसे हालात और शर्तें बना दीं कि कर्मचारियों के पास स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना (वीआरएस) बेमन से स्वीकार कर लेने के अलावा और कोई विकल्प नहीं था।

इस समिति के सभापति एन. जनार्दन रेड्डी हैं। जो कांग्रेस के नेता हैं। वह केन्द्र सरकार में मंत्री और आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री भी रह चुके हैं। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि बाल्को कर्मचारियों को परेशान करने और उन्हें जबर्दस्ती वी आर एस लेने के लिए तरह-तरह से मजबूर किया गया। उनका दूर-दराज के इलाकों में ट्रांसफर किया गया। काम के हालात बेहद कठिन बना दिये गये। समिति ने इस संबंध में मॉडर्न फूड की याद भी दिलायी है जिसके कर्मचारी भी निजीकरण के बाद भी वीआरएस लेने के लिए मजबूर किये जा रहे हैं।

इस समिति ने सरकारी प्रतिष्ठानों को बेचने के तौर-तरीकों पर भी सवाल खड़े किये हैं। सरकारी प्रतिष्ठानों की नीलामी की बोली लगाने वालों के लिए जो नियम-कानून दस साल पहले बनाये गये हैं वे इतने ढीले ढाले हैं कि जनता के पैसे को गैरक़ानूनी ढंग से हजम कर जाने वाले आर्थिक अपराधियों को भी बोली लगाने की खुली छूट मिल जाती है।

बेचे जाने वाले सरकारी प्रतिष्ठान की कीमत आंकने के तरीके में भी भारी झोल है। समिति ने इसकी ओर भी ध्यान दिलाया है। अब तक सरकारी चलन यह रहा है कि किसी सरकारी उपक्रम की जिन परिसम्पत्तियों से कोई आय नहीं होती उनका मूल्य शामिल नहीं किया जाता। इस पर ऐतराज करते हुए समिति ने कहा कि हो सकता है कि जिन परिसम्पत्तियों से आज आय नहीं हो रही है बेचने के बाद उनसे आय होने लगे। इस सरकारी चलन के चलते किसी सरकारी उपक्रम को बेचने के लिए उनकी कीमत लगाते समय जमीन या आय न देने वाली दूसरी परिसम्पत्तियों का मूल्य नहीं शामिल होने से निजी पूंजीपतियों को जनता के खून-पसीने के दम पर खड़े गये उपक्रम कौड़ियों के भाव मिल जाते हैं।

सरकारी उपक्रमों को बेचने से मिलने वाली धनराशि के इस्तेमाल पर भी इस समिति ने ऐतराज किया है। इस पैसे को भारत सरकार के सँचित कोष में जमा करा दिया जाता है और सरकार अपनी प्राथमिकताओं के अनुसार इन्हें खर्च करती है। समिति ने सरकार से सिफारिश की है कि सरकारी उपक्रमों को बेचने से मिली धनराशि को अलग से जमा किया जाना चाहिए और इसका बड़ा हिस्सा सामाजिक और बुनियादी क्षेत्रों के लिए खर्च किया जा सके।

संसद की समिति ने सरकारी प्रतिष्ठानों को बेचने के नतीजों और तौर-तरीकों के बारे में जो भी बातें कहीं हैं वे सच तो जरूर है लेकिन यह कोई अनोखी या सच्चाई नहीं है। जब से बेचने की इस नीति पर अमल शुरू हुआ है तभी से तमाम पत्र, सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ता और मज़दूर संगठनों के नुमाइन्दे ठीक वही बातें कहते रहे हैं जो समिति ने कहीं हैं। लेकिन सरकारी हलकों में कभी उस पर कान नहीं दिया गया। पिछले दस सालों में सरकारें बदलती रहीं लेकिन सरकारी उपक्रमों को बेचने का सिलसिला चलता रहा। देशी विदेशी पूंजीपति जनता की सम्पत्तियों को माटी के मोल खरीदते रहे। खरीदने के बाद मज़दूरों को धक्के देकर बाहर निकालते रहे, जबरिया वी आरएस थमाते रहे। सरकार आंख-कान मूंदे बेचने से मिले पैसे को सरकारी फिजूलखर्चियों के लिए इस्तेमाल करती रही।

यह सिलसिला बदस्तूर जारी है। बेचने की लिस्ट में नये-नये नाम जुड़ते जा रहे है। ऐसे में संसदीय समिति की रिपोर्ट को ध्यान में रखते हुए सरकारी नीति में किसी बड़े फेरबदल की उम्मीद करना बेकार है। खुद जर्नादन रेड्डी या समिति के दूसरे सदस्य भी इसे अच्छी तरह समझते हैं। ये लोग इतने मासूम नहीं है। सत्ता की राजनीति के मंजे मंजाये खिलाड़ी है। वे जानते हैं कि जगजाहिर सच्चाइयां मान लेना होशियारी होती है। यही होशियारी दिखाते हुए संसद की समिति ने विनिवेश की सच्चाई को कबूला है।

अपनी कमजोरियों को सही ढंग से समझकर आगे के कार्यभार तय किये जाएं

(पेज 1 से आगे)

संघर्ष के अंतिम दौर में नेतृत्व के जो छह साथी बर्खास्त किये गये, उन्हें भी वापस लेना पड़ा। लेकिन एल्यूमीनियम शॉप की शिफ्टिंग और हड़ताल समाप्ति के बाद मालिकान ने सबसे बड़ी दगाबाजी यह की कि हड़ताल की अवधि का वेतन देने से मुकर गया।

आज सबसे ज़रूरी यह है कि पीछे मुड़कर देखते हुए हम होण्डा के इस महत्वपूर्ण आंदोलन से ज़रूरी सबक निकालें। शिफ्टिंग में मालिक सफल क्यों हुए और मज़दूर आंदोलन विफल क्यों हुआ? इसका विश्लेषण जरूरी है। किसी एक कारखाने में संघर्ष में मज़दूर जीतते भी हैं और हारते भी हैं। पूंजीपतियों-मज़दूरों के बीच की लम्बी लड़ाई जिन वर्ग-सचेत मज़दूरों और उनके अगुवा दस्तों की आंखों के सामने हर-हमेशा मौजूद रहती है, उनके लिए सबसे ज़रूरी यह होता है कि वे किसी एक कारखाने या किसी एक सेक्टर के मज़दूरों के किसी भी आंदोलन की हार या जीत दोनों से ही ज़रूरी सबक निकालें और उससे व्यापक मज़दूर आबादी को परिचित करायें। यदि सही, वस्तुपरक और वैज्ञानिक ढंग से सबक निकाले जायें और अपनी कमजोरियों की बेलाग लपेट पड़ताल की जाये तो आज की हार को कल की जीत में बदला जा सकता है, संघर्ष को व्यापक आधार दिया जा सकता है और उसे पूंजी के विरुद्ध श्रम की दीर्घकालिक लड़ाई की मजबूत कड़ी बनाया जा सकता है। आइये, इस दृष्टि से हम होण्डा मज़दूर आंदोलन का विश्लेषण करें और उसकी कमियों-कमजोरियों की पड़ताल करके ज़रूरी सबक निकालें।

सबसे पहले, यह याद रखना बेहद ज़रूरी है कि किसी भी इलाके के छोटे से छोटे आंदोलन को देश-दुनिया का माहौल निश्चित तौर पर प्रभावित करता है। इसलिए किसी भी आंदोलन की योजना और रणनीति बनाते समय दो चीजों का ख्याल रखना बेहद ज़रूरी होता है। पहली, वस्तुगत परिस्थितियां और दूसरी, अपनी ताकत। लड़ने वालों की चेतना, उनकी एकजुटता, उनके नेतृत्व की राजनीतिक परिपक्वता, व्यापक आबादी का समर्थन आदि-आदि उपादान 'अपनी ताकत' के अंतर्गत आ जाते हैं।

अब पहले परिस्थितियों की बात करें। अतीत में होण्डा मज़दूरों ने अपने संघर्ष के आगे जब मालिकों को घुटने टेकने के लिए मजबूर किया था तब नई आर्थिक नीतियों पर अमल अभी शुरू नहीं हुआ था। नेतृत्व की गद्दारी और अर्थवादी भटकावों के बावजूद मज़दूर आंदोलन आज जैसी पस्त हालत में नहीं था। इस पूरे माहौल से होण्डा के मज़दूर और उनकी चेतना प्रभावित हो रही थी। उनके बीच उस समय क्रांतिकारी विचारों के शुरूआती प्रचार के दौर का भी उत्साहपूर्ण प्रभाव था। आज की स्थिति उस समय से काफी भिन्न है। उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों पर अमल के बारह वर्ष हो चुके हैं। कानून, न्यायपालिका, सरकार, प्रशासन सभी एकदम खुले तौर पर देशी-विदेशी पूंजीपतियों की सेवा में सन्नद्ध हो चुके हैं। और रही-सही कोर-कसर भी पूरी करने का सिलसिला जारी है। भारत सरकार जापानी, यूरोपीय और अमेरिकी पूंजीपतियों की हर शर्त को स्वीकार कर रही है और उन्हें अति लाभ निचोड़ने का पूरा मौका दे रही है। लम्बे संघर्षों और अकूत कुर्बानियों से अर्जित, मज़दूरों के अधिकांश जनवादी अधिकारों को हड़पा जा चुका है। ज्यादातर काम आज ठेके और दिहाड़ी पर हो रहे हैं। काम के घण्टों और न्यूनतम मज़दूरी आदि से संबंधित बचे-खुचे कानूनों पर भी देशी-विदेशी कम्पनियां अमल नहीं कर रही हैं और कहीं कोई सुनवाई नहीं है। ट्रेड यूनियनों का राष्ट्रीय नेतृत्व पहले सुधारवादी और अर्थवादी था। अब वह या तो मालिकों का खुला एजेण्ट है या निठल्ला बैठा ऊंघ रहा है। यदि होण्डा जैसे किसी कारखाने की यूनियन का नेतृत्व रैडिकल हाथों में आ भी जाता है तो अन्य अधिकांश यूनियनों का नौकरशाह नेतृत्व उसे कतई पसन्द नहीं करता और ज़ुबानी जमाखर्च के सिवा और कोई वास्तविक मदद नहीं करता। पूंजीवादी अर्थतंत्र की मंदी के चलते, मालिकान आज ऐसी स्थिति में हैं कि हड़ताल होने पर लम्बे समय तक की बंदी के द्वारा कारखाना विशेष के अलग-थलग पड़े मज़दूरों को थका देते हैं। यह भी गौरतलब है कि श्रीराम ग्रुप का शेयर खरीदकर अपने मज़दूर विरोधी निरंकुश रवैये के लिए विश्वविख्यात, जापानी साम्राज्यवादी होण्डा के आज रुद्रपुर प्लाण्ट की अकेली मालिक है। आज की यह पूरी वस्तुगत स्थिति होण्डा के मज़दूरों के प्रतिकूल थी और मालिकान के अनुकूल थी, जब संघर्ष की शुरूआत हुई।

'बिगुल' का शुरू से ही यह आकलन था कि होण्डा किश्तों में प्लाण्ट को नोएडा ले जाकर बेहद सस्ती दरों पर नये मज़दूरों की श्रमशक्ति खरीदकर ज़्यादा मुनाफा निचोड़ना चाहता है और बेहतर वेतन एवं सुविधाएं पाने वाले रुद्रपुर प्लाण्ट के मज़दूरों को सड़कों पर धकेल देना चाहता है। इसके लिए वह पूरा जोर लगा देगा तथा सीधे सरकार पर अपने तथा जापान सरकार के प्रभाव तक का इस्तेमाल करेगा और हर कीमत पर एल्यूमीनियम मशीन शॉप को शिफ्ट करना चाहेगा। लेकिन यह तो और बुरा होता कि मज़दूर चुपचाप अपने भविष्य को सीलबंद होते देखते रहते। उन्हें यथाशक्ति लड़ना ही था, परिस्थितियां चाहे जितनी भी प्रतिकूल हों। कभी कभी हार की अधिकतम संभावना के बावजूद मज़दूरों को लड़ना होता है। ताकि मालिकों की मनचाही होने को कुछ टाला जा सके, उसकी रफ्तार कम की जा सके और आगे की लड़ाई की तैयारी के लिए समय लिया जा सके। कभी-कभी हारने के लिए भी लड़ना पड़ता है ताकि भविष्य में जीतने के लिए लड़ा जा सके।

होण्डा कारखाने के मज़दूर तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद तब बेहद कारगर ढंग से लड़ सकते थे और मालिकों के तमाम मंसूबों को नाकाम कर सकते थे जबकि तराई के कारखानों-फार्मों में काम करने वाले लाखों सर्वहाराओं की आबादी का एक तिहाई हिस्सा भी उनके संघर्ष के सक्रिय समर्थन में आ खड़ा होता। लेकिन आज की कड़वी सच्चाई यह है कि फिलहाल यह मुमकिन नहीं है। इसके लिए अभी काफी लम्बे, सघन और सतत राजनीतिक प्रचार एवं एजिटेशन की कार्रवाई क्रांतिकारी वामपंथी शक्तियों को चलानी होगी, तराई के मज़दूरों की वर्ग-चेतना उन्नत बनानी होगी, जो मज़दूर यूनियनों में संगठित हैं उन्हें अर्थवादी-सुधारवादी दलदल से बाहर खींचना होगा और जो असंगठित हैं उन्हें क्रांतिकारी जनदिशा के आधार पर संगठित करना होगा। यह भविष्य का लम्बा काम है। लेकिन होण्डा मज़दूरों को तो आज की परिस्थिति की जमीन पर खड़े होकर अपने संघर्ष की योजना तैयार करनी थी।

'बिगुल' का शुरू से ही स्पष्ट मत था कि आज का ही नहीं बल्कि कल का भी ख्याल करते हुए होण्डा मज़दूरों को पूरे तराई की मज़दूर आबादी का हर तरह का समर्थन-सहयोग हासिल करने की हरचन्द कोशिश करनी चाहिए, लेकिन यह इतने कम समय में संभव नहीं हो सकता कि होण्डा के मज़दूरों का आंदोलन तराई के अन्य मज़दूरों के भी एक अच्छे खासे हिस्से का अपना आंदोलन बन जाये। अन्य ट्रेड यूनियनों से भी रस्मी सहयोग से अधिक की उम्मीद नहीं की जा सकती। हमारा यह भी कहना था कि संघर्ष के क़ानूनी रूपों-रास्तों की अनदेखी नहीं की जानी चाहिए, लेकिन आज की परिस्थितियों में लेबर कोर्ट या हाईकोर्ट-सुप्रीम कोर्ट से मज़दूरों को रत्ती भर भी उम्मीद पालने की जरूरत नहीं है।

तब फिर सवाल यह था कि मज़दूर कैसे लड़ें? 'बिगुल' का मत स्पष्ट और दो टूक था। हमारे ख्याल से रास्ता एक ही था। यदि होण्डा कारखाने के 253 स्थायी मज़दूरों का (और अन्य अस्थायी मज़दूरों का भी) 60 फीसदी हिस्सा भी अपने-अपने परिवारों सहित कारखाने को घेरकर बैठ जाता, वहीं अपनी अस्थायी बस्ती बसा लेता और पुलिस-प्रशासन की मदद से जब भी शिफ्टिंग की कोशिश की जाती तो औरतों-बच्चों सहित लेटकर रास्ता जाम कर दिया जाता तो मालिकान और प्रशासन के लिए काफी सिरदर्द पैदा किया जा सकता था और उन्हें झुकने के लिए मजबूर भी किया जा सकता था। यह स्थिति अपने आप में पूरे तराई क्षेत्र के मज़दूरों और आम आबादी के बीच जबर्दस्त समर्थन-लहर पैदा कर सकती थी और उनकी भावी एकजुटता के लिए एक नया, मजबूत आधार तैयार करने का काम भी कर सकती थी।

लेकिन आंदोलन की कड़वी सच्चाई यह रही कि 253 स्थायी मज़दूरों की बहुसंख्यक आबादी की सपरिवार भागीदारी तो दूर रही, बमुश्किल तमाम 50-60 मज़दूर ही पूरे हड़ताल के दौरान जुझारू रूप से सक्रिय रहे। मज़दूर परिवारों की कुछ स्त्रियों द्वारा तमाम मज़दूरों के घर-घर जाकर पूरे परिवार सहित भागीदारी के आह्वान के बावजूद, कुछ एक धेरावों-प्रदर्शनों को छोड़कर, स्त्रियों की हिस्सेदारी मात्र प्रतीकात्मक ही बनी रही। यह जरूर था कि नेतृत्व के ज़्यादातर साथी अपने परिवारों के साथ पूरी मुस्तैदी से डटे रहे।

आखिर क्या कारण था कि नौकरी पर मंडराते खतरे के बावजूद, ज़्यादातर मज़दूरों ने, परिवार सहित सड़कों पर उतरना तो दूर, खुद भी पूरे संघर्ष में सक्रिय भागीदारी नहीं की? कारणों की पड़ताल करते हुए सबसे पहले तो इस कड़वी सच्चाई को स्वीकार करना होगा कि अतीत के संघर्षों के चलते होण्डा के मज़दूरों को आज जो बेहतर वेतन और सुविधाएं हासिल हैं, उनके नतीजे के तौर पर उनमें मध्यवर्गीय सुविधायोग की प्रवृत्ति पैदा हुई है तथा उनका लड़ाकूपन कम हुआ है। ऐसी स्थिति में प्रायः मज़दूरों के ऐसे तबके में इस तरह की अर्थवादी मौकापरस्ती पैदा होती है कि यूनियन नेतृत्व लड़कर या तीन-तिकड़म करके उनकी मांगें पूरी करा दे और उन्हें खुद ज़्यादा कष्ट न उठाना पड़े। मौजूदा यूनियन नेतृत्व की ईमानदारी और जुझारूपन पर बहुसंख्यक मज़दूरों को पूरा विश्वास था और वे दिल से आंदोलन के पक्ष में थे, लेकिन संघर्ष में सक्रिय भागीदारी करने और सपरिवार सड़क पर उतरने से वे बचते रहे।

इस सच्चाई से भी मुंह नहीं चुराया जा सकता कि आंदोलन-विरोधी भितरघाती तत्व शुरू से अन्त तक सक्रिय रहे और प्रबंधन की शह एवं मिलीभगत से मज़दूरों को बांटने और निरुत्साहित करने के षड्यंत्रों-कुचक्रों में वे लगातार लगे रहे। आंदोलन जब लम्बा खिंचा तो अपनी पिछड़ी चेतना और कमजोरियों के चलते मज़दूरों का एक हिस्सा थकने लगा और सोचने लगा कि समझौते की कोई सूरत निकल आये। इस स्थिति का हड़ताल विध्वंसक भितरघातियों ने भरपूर फायदा उठाया। हालांकि इन सबके बावजूद बहुसंख्यक मज़दूर अंत तक आंदोलन के पक्ष में खड़े रहे, पर उनके जोश और भागीदारी में स्पष्ट गिरावट दीखने लगी थी।

ऐसी मनःस्थिति में मज़दूरों के एक बड़े हिस्से में न्यायपालिका और बुर्जुआ नेताओं तक से मिथ्या आशाएं पैदा हुईं। जिनकी जमीन उनकी पिछड़ी राजनीतिक चेतना में पहले से ही मौजूद थी।

जहां तक होण्डा-आंदोलन के मसले पर व्यापक मेहनतकश आबादी की इलाकाई एकजुटता का प्रश्न है, यह सही है कि होण्डा के मज़दूरों को क्षेत्र के मज़दूरों-कर्मचारियों और आम जनता का व्यापक समर्थन मिला, लेकिन यहां भी इस सच्चाई को स्वीकार करना होगा कि पूरे इलाके की मज़दूर आबादी होण्डा-मज़दूरों की अपील के बाद, अपनी पहलकदमी पर आकर उनके साथ खड़ी हो गयी हो, ऐसा नहीं हुआ। समय-समय पर, दूसरी जगहों के मज़दूरों ने जो भागीदारी की, वह प्रतीकात्मक से आगे नहीं जा सकी। होण्डा मज़दूरों के आह्वान पर पूरी तराई के मज़दूरों-कर्मचारियों ने काले फीते बांध कर जो व्यापक एकजुटता दिखाई, वह प्रशंसनीय थी, लेकिन वह आगे और उन्नत धरातल की सहभागिता के रूप में विकसित नहीं हो सकी।

जहां तक 'संयुक्त मज़दूर संघर्ष मोर्चा' की भूमिका का सवाल है, यह आम ट्रेड यूनियन मंचों से अलग कोई जुझारू चरित्र अभी तक विकसित नहीं कर पाया है और यह अलग से हमारी सामने खड़ी एक चुनौती है। यह मोर्चा अभी मज़दूरों की वास्तविक, अमली एकजुटता का प्रतिनिधित्व नहीं करता। बल्कि सच तो यह है कि मोर्चे के घटक यूनियनों का नेतृत्व अपनी आम सदस्यता को उनके खुद के आंदोलनों में भी पूरी तरह से गोलबन्द नहीं कर पाता तो यह भला उन्हें वह चेतना कैसे दे सकता है या ऐसा आह्वान कैसे कर सकता है कि वे किसी दूसरे सेक्टर या कारखाने के मज़दूरों के संघर्ष को अपना मानकर उसमें सक्रिय भागीदारी करें? यही कारण था कि इस आंदोलन में 'संघर्ष मोर्चा' या 'होण्डा बचाओ संघर्ष समिति' के घटक संगठनों की भागीदारी प्रतीकात्मक के दायरे से आगे नहीं जा सकी।

आंदोलन के शुरूआती दौर में जुलूस, मशाल जुलूस, फैक्ट्री से श्रम-कार्यालय तक प्रदर्शन-सभा आदि ने खासी गर्मी और गतिमानता पैदा की, लेकिन व्यापक मज़दूर आबादी की जुझारू भागीदारी की कमी के चलते यह बनी नहीं रह सकी। पीछे मुड़कर देखने पर सहज ही यह नतीजा निकलकर सामने आता है कि शुरू में ही धुंआधार संघर्ष के ऊंचे और जुझारू 'फार्म' अपनाये गये और बाद में उसे जैसे-तैसे खींचने की स्थिति आ गयी। कानूनी उलझाव मुख्य हो गया और मज़दूर भी कोर्ट से और यहां तक कि बुर्जुआ नेताओं से कुछ राहत या सांत्वना की उम्मीद पालकर इंतजार करने की मानसिकता में आ गये। नेतृत्व ने इस बुनियादी बात की उपेक्षा की कि पूरी राजनीतिक तैयारी, प्रचार और आह्वान के बाद हम किसी संघर्ष को वहीं तक ले जा सकते हैं, जहां तक जाने के लिए लड़ने वाले लोगों की चेतना तैयार हो सकी हो। होना यह चाहिए था कि आंदोलन के बीच ही, समय-समय पर मज़दूरों की आम सभा बुलाकर अपनी पूरी बात रखकर, मज़दूरों की भागीदारी की पूरी सहमति के आधार पर ही आगे संघर्ष या समझौते की रूपरेखा तय की जानी चाहिए थी। जनता की स्थिति व चेतना का ख्याल किये बिना किसी आंदोलन को उच्चतर धरातल पर ले जाने या लम्बा खींचने की मनोगतवादी प्रवृत्ति आगे चलकर खतरनाक किस्म की 'आंदोलनपंथी' या 'हरावलपंथी' भटकाव की शक्ल अख्तियार कर सकती है- हमें यह बात हर-हमेशा याद रखनी होगी।

होण्डा आंदोलन ने एक बार फिर इस अहसास को और गहरा बनाया है कि अभी काफी कुछ करने को पड़ा है। मज़दूर वर्ग के हरावल दस्तों के सामने दो बुनियादी और सर्वोपरि कार्यभार हैं।

पहला यह कि उदारीकरण निजीकरण 'श्रम-सुधार' आदि के इस दौर के औद्योगिक माहौल में औद्योगिक क्षेत्रों में मज़दूर आबादी की व्यापक इलाकाई एकजुटता मजबूत बनाये बगैर किसी एक कारखाने के मज़दूरों का लड़ पाना और जीत जाना आज कठिन से कठिनतर होता जा रहा है। इसलिए व्यापक मज़दूर आबादी की जुझारू इलाकाई एकजुटता के लिए हमें मज़दूर आबादी में व्यापक राजनीतिक प्रचार सघन एवं लम्बे समय तक चलाना होगा। ट्रेड यूनियन और अर्थवाद के भटकावों के खिलाफ अभी भी एक लम्बी लड़ाई लड़ी जानी है।

दूसरा बुनियादी काम है, कारखाना-विशेष की आम मज़दूर आबादी को अपनी हर लड़ाई में जुझारू और सक्रिय भागीदारी के लिए तैयार करना। इसके लिए भी हमें मज़दूरों के बीच धैर्यपूर्वक राजनीतिक शिक्षा एवं प्रचार की कार्रवाई चलानी होगी। रोजमर्रे के जीवन और संघर्षों के दौरान मज़दूर वर्ग को लगातार उसके ऐतिहासिक मिशन की याद दिलाना होता है, उसे लगातार यह बताना होता है कि छोटी-छोटी लड़ाईयां लड़ते हुए मज़दूरों को लगातार क्रांतिकारी बदलाव की फैसलाकुन लड़ाई के लिए तैयार होना होता है और यह कि मज़दूर क्रांति ही अन्ततोगत्वा मज़दूर वर्ग पर ढायी जाने वाली तमाम आपदाओं और जुल्मों का खातमा कर सकती है। इसी प्रचार शिक्षा एवं आंदोलनों के अमली प्रशिक्षण के दौरान ही मज़दूरों के बीच से उनका सच्चा क्रांतिकारी नेतृत्व विकसित होता है। जो संघर्ष के आगे की मंजिलों में विकास की एक बुनियादी शर्त होता है।

होण्डा मज़दूरों के वर्तमान नेतृत्व का बहुलांश जुझारू, ईमानदार और क्रान्तिकारी स्पिरिट से लैस है, लेकिन उसमें अभी राजनीतिक परिपक्वता की कमी है। उसे सच्चा हरावल बनने के लिए अभी काफी कुछ करना है। साथ ही हड़तालों-आंदोलनों-वार्ताओं के अमली प्रशिक्षण की भी अभी नेतृत्व में काफी कमी है, जिसके चलते प्रबंधन प्रायः उन्हें धोखा देने और कन्फ्यूज कर देने में कामयाब हो जाता है।

आज की वस्तुगत स्थिति यदि मालिकों के पक्ष में है तो कल की वस्तुगत स्थिति निश्चित तौर पर मज़दूरों के पक्ष में होनी है। जो होण्डा में हो रहा है, वही पूरे देश के सभी कारखानों में हो रहा है। ठेकाकरण-दिहाड़ीकरण का सिलसिला जारी है। श्रमिक अधिकारों की डाकेजनी जारी है। छंटनी-तालाबंदी का अविराम क्रम जारी है। मज़दूरों का जो हिस्सा अपने को कुछ विशेष सुविधा प्राप्त समझ रहा था, वह भी धौंसपट्टी का शिकार हो रहा है और आम मज़दूरों की कतारों में धकेला जा रहा है। परम्परागत ट्रेड यूनियन नेतृत्व अब एकदम बेबस होकर बेनकाब होता जा रहा है और भ्रम पैदा करने की क्षमता भी खोता जा रहा है। अर्थवाद का सामाजिक आधार कमजोर होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में आने वाले दिनों में व्यापक मज़दूर एकता का भौतिक आधार तेजी से तैयार और मजबूत होगा, यह तय है। इसके मद्देनजर हमें अपनी तैयारी तेज़ कर देनी होगी और रत्तीभर भी ढिलाई नहीं करनी होगी।

यदि अपने अनुभवों से सही ढंग से निचोड़ निकाला जाये और अपनी हारों-विफलताओं से सबक निकालकर, अपनी कमजोरियों को सही ढंग से समझकर आगे के कार्यभार तय किये जायें तो छोटी-मोटी हारों को एक फैसलाकुन जीत की नींव के पत्थरों में तब्दील किया जा सकता है।

विशेष सामग्री

(सत्रहवीं किश्त)

पार्टी की बुनियादी समझदारी

अध्याय-6

पार्टी का केन्द्रीकृत नेतृत्व

एक क्रांतिकारी पार्टी के बिना मज़दूर वर्ग क्रांति को कतई अंजाम नहीं दे सकता। लेनिन ने इस बात को बार-बार जोर देकर कहा था। स्तालिन और माओ ने भी बराबर इस बात पर जोर दिया और बीसवीं सदी की सभी सफल सर्वहारा क्रान्तियों ने भी इसे सत्यापित किया।

लेनिन ने सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के सांगठनिक उसूलों का निर्धारण किया और इसी फौलादी सांचे में बोल्शेविक पार्टी को ढाला। चीन की पार्टी भी बोल्शेविक पार्टी की ही उत्तराधिकारी थी। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान, समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष का संचालन करते हुए माओ के नेतृत्व में चीन की पार्टी ने अन्य युगान्तरकारी सैद्धान्तिक उपलब्धियों के साथ-साथ लेनिनवादी सांगठनिक सिद्धान्तों को भी और आगे विकसित किया।

सोवियत संघ और चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए बुर्जुआ तत्वों ने सबसे पहले यही ज़रूरी समझा कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी का चरित्र बदल दिया जाये। हमारे देश में भी संसदीय रास्ते की अनुगामी नामधारी कम्युनिस्ट पार्टियों मौजूद हैं। भारतीय मजदूर क्रांति को सफल बनाने के लिए भारत में भी सर्वहारा वर्ग की एक सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने का काम सर्वोपरि है।

इसके लिए बेहद ज़रूरी है कि मजदूर वर्ग यह जाने कि असली और नकली कम्युनिस्ट पार्टी में क्या फर्क होता है और एक क्रान्तिकारी पार्टी कैसे खड़ी की जानी चाहिए।

इसी उद्देश्य से, फरवरी, 2001 अंक से हमने एक बेहद जरूरी किताब 'पार्टी की बुनियादी समझदारी' के अध्यायों का किश्तों में प्रकाशन शुरू किया है। इस अंक में सत्रहवीं किश्त दी जा रही है। यह किताब सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान पार्टी-कतारों और युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए तैयार की गयी श्रृंखला की एक कड़ी थी। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस (1973) में पार्टी के गतिशील क्रान्तिकारी चरित्र को बनाये रखने के प्रश्न पर अहम सैद्धान्तिक चर्चा हुई थी, पार्टी का नया संविधान पारित किया गया था और संविधान पर एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी थी। इसी नई रोशनी में यह पुस्तक एक सम्पादकमण्डल द्वारा तैयार की गयी थी। मार्च, 1974 में पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, शंघाई से इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की 4,74,000 प्रतियां छपीं। यह पुस्तक पहले चीनी भाषा से फ्रांसीसी भाषा में अनूदित हुई और 1976 में प्रकाशित हुई। फिर नार्मन बेथ्यून इंस्टीच्यूट टोरण्टो (कनाडा) ने इसका फ्रांसीसी से अंग्रेजी में अनुवाद कराया और 1976 में ही इसे प्रकाशित भी कर दिया। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद मूल पुस्तक के इसी अंग्रेजी संस्करण से किया गया है।

- सम्पादक

महत्वपूर्ण प्रश्नों को अच्छी तरह समझो, पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व को मजबूत करो

पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व को मजबूत करने के लिए पार्टी कमेटियों को हर स्तर पर पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा को अपने प्रारंभ बिन्दु के रूप में लेना चाहिए और महत्वपूर्ण प्रश्नों का पूरी तरह समझना चाहिए। महत्वपूर्ण प्रश्नों को पूरी तरह समझने का मतलब है प्रधान अंतरविरोधों को समझना। अध्यक्ष माओ ने बताया है-"ऐसी जटिल प्रक्रिया के अध्ययन में जिसमें दो या उससे अधिक अंतरविरोध हों, हमें अपना हर प्रयास इसका प्रधान अंतरविरोध खोजने में लगा देना चाहिए। एक बार इस प्रधान अंतरविरोध को समझ लिया जाए, तो फिर सारी समस्याएं आसानी से सुलझाई जा सकती हैं। (माओ त्से-तुङ., संकलित रचनाएं, खण्ड-1, अंग्रेजी संस्करण, पृ. 332)

समाजवाद के सम्पूर्ण ऐतिहासिक काल के दौरान सर्वहारा वर्ग और बुर्जुआ वर्ग के बीच, समाजवाद और पूंजीवाद के बीच का संघर्ष ही हमारे देश का प्रधान अंतरविरोध है। इसलिए महत्वपूर्ण प्रश्नों को समझने का अर्थ है दो वर्गों, दो रास्तों और दो कार्यदिशाओं के बीच के संघर्ष को समझना; इन महत्वपूर्ण प्रश्नों को समझने का अर्थ है प्रधान अंतरविरोध को समझना।

अत्यधिक जटिल क्रांतिकारी काम में पार्टी ही हर चीज का नेतृत्व करती है। पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व को लागू करने के लिए, पार्टी कमेटियों का काम बुनियादी तौर पर वर्ग-संघर्ष और दो लाइनों के संघर्ष के इर्द-गिर्द केन्द्रित होना चाहिए। ऐसा इसलिए क्योंकि सर्वहारा की तानाशाही की स्थितियों में वर्ग-संघर्ष और दो लाइनों का संघर्ष वस्तुगत तौर पर हर क्षेत्र में हर मोर्चे पर, सारे संस्थानों में मौजूद रहता है और इनकी अपेक्षा करना असंभव होता है। समूचे क्रांतिकारी उद्देश्य वर्ग-संघर्ष और दो लाइनों के संघर्ष के लिए निर्णायक महत्व वाले बुनियादी सवालों को समझकर ही पार्टी कमेटियां सारी परिस्थितियों में स्पष्ट समझदारी बनाये रख सकती हैं, सभी कार्यों में सर्वहारा राजनीतिक दिशा कायम रख सकती हैं, विभिन्न "वाम" या दक्षिणपंथी गलत प्रवृत्तियों द्वारा पैदा ही जाने वाली विघ्नबाधाओं से निपट सकती हैं। मजबूती के साथ पार्टी की बुनियादी राजनीतिक कार्यदिशा और सिद्धान्तों को लागू कर सकती हैं और सर्वहारा वर्ग के हिरावल के रूप में संघर्ष में अपनी नेतृत्वकारी भूमिका अदा कर सकती हैं।

पार्टी-कमेटियां इन महत्वपूर्ण प्रश्नों को समझने के काबिल हो सकें, इसके लिए जरूरी है कि वे लगातार और गौर से अपने क्षेत्र या संस्थान में बुनियादी वर्ग संबंधों का विश्लेषण करें, लम्बे समय में वर्ग शक्तियों के संबंध में स्थिति और वर्ग-संघर्ष तथा दो लाइनों के संघर्ष में नयी प्रवृत्तियों को समझने के काबिल बनें। अध्यक्ष माओ हमें शिक्षा देते हैं कि हमें अनिवार्य रूपसे 'किसी राजनीतिक स्थिति का विश्लेषण करने में और वर्ग शक्तियों का मूल्यांकन करने में मार्क्सवादी-लेनिनवादी पद्धति लागू करनी चाहिए....' (माओ त्से-तुङ. संकलित रचनाएं खण्ड-1, 'पार्टी के भीतर गलत विचारों को सुधारने के बारे में,' अंग्रेजी संस्करण, पृ. 112) समाजवाद के दौर में वर्ग-संघर्ष जटिल और लम्बी अवधि वाला होता है। इसमें एक ही साथ और हमारे बीच के अंतरविरोध तथा जनता के बीच के अंतरविरोध दोनों मौजूद रहते हैं, और चूंकि ये अंतरविरोध अक्सर एक दूसरे से गुंथे होते हैं अत: उन्हें एकदम से अलग बता पाना मुश्किल होता है। ऐसी परिस्थितियों में समाज में वर्ग संबंधों से परिचित होने पर, उनका गहराई से विश्लेषण करने पर ही वर्ग-संघर्ष के वस्तुपरक नियमों को समझ पाना, पार्टी की बुनियादी राजनीतिक कार्यदिशा और सिद्धान्तों को लागू कर पाना, दो तरह के अंतरविरोधों में भेद कर पाना और क्रांति और निर्माण के काम में और बड़ी जीतें हासिल करने के उद्देश्य से अपने असली मित्रों के साथ एका कायम कर पाना तथा अपने असली शत्रुओं पर हमला कर पाना मुमकिन है।

पार्टी कमेटियां महत्वपूर्ण प्रश्नों को समझने के काबिल हों, इसके लिए जरूरी है कि वे सभी कार्यों में सर्वहारा राजनीति को कमान में रखें, मूलभूत और गौण प्रश्नों के बीच, राजनीतिक और पेशेवर प्रश्नों के बीच क्रांति और उत्पादन के बीच तथा लाल होने और विशेषज्ञ होने के बीच के संबंधों को सही ढंग से हल करें और सही राजनीतिक और सैद्धान्तिक कार्यदिशा के नेतृत्व को सुनिश्चित करें। महत्वपूर्ण प्रश्नों को समझने का अर्थ है उन्हें सबसे आगे रखना, उन्हें पार्टी कमेटी की बैठकों में मूलभूत प्रश्नों के रूप में एजेण्डे पर रखना।

पार्टी कमेटियों को महत्वपूर्ण प्रश्नों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए और उन पर निरंतर विचार-विमर्श करना चाहिए। इसका यह मतलब नहीं है कि वे अपने अन्य कार्यों की उपेक्षा कर सकती हैं या उन्हें पूरा करने के महत्व को नकार सकती हैं; उलटे, उन्हें उनका उचित स्थान अवश्य मिलना चाहिए। मसलन, समाजवादी अर्थव्यवस्था को विकसित करना और औद्योगिक व कृषि उत्पादन दोनों को अच्छी तरह चलाना बेहद महत्वपूर्ण कार्य हैं- समाजवाद के दौर के दीर्घकालिक कार्य हैं- और वे हर हाल में अनिवार्यत: अच्छी तरह पूरे होने चाहिए। लेकिन वर्ग-संघर्ष और दो लाइनों के संघर्ष को सफलतापूर्वक चलाने के काम की तुलना में उत्पादन के कार्य दूसरे स्थान पर आते हैं। जैसा कि लेनिन ने बताया था 'राजनीति को अर्थशास्त्र पर वरीयता मिलनी ही चाहिए। इसका उलटा कहना मार्क्सवाद का कखग भूलना है।' इस प्रकार मूलभूत प्रश्नों और बाकी कामों के बीच एक मातहती का रिश्ता होता है। हम दोनों को एक ही धरातल पर रखकर विचार नहीं कर सकते और उन्हें उलटकर तो कत्तई नहीं देख सकते हैं। इसके अलावा किसी मोर्चे पर, मसलन, उत्पादन के मोर्चे पर यह भी प्रश्न होता है कि वह किस विचारधारा से मार्गदर्शित हो रहा है वह किस दिशा में जा रहा है और कौन सी राह चुन रहा है यानी कि यहां कार्य-दिशा का सवाल भीआता है। बिना उत्पादन के क्षेत्र में वर्ग संघर्ष और दो लाइनों के संघर्ष से मतलब रखे अगर हम सीधे बस उत्पादन में जुट जाएं, अगर हम सर्वहारा राजनीति को किनारे कर उत्पादन के लिए उत्पादन करने लगें तो न सिर्फ उत्पादन को सही ढंग से चलाना असंभव हो जाएगा, बल्कि साथ ही साथ हम अपनी दिशा गवां बैठने का जोखिम मोल ले लेंगे जो कि अत्यधिक खतरनाक होगा।

ऐसे कॉमरेड हैं जो मूलभूत प्रश्नों को समझने को महत्व पर्याप्त रूप से नहीं समझते। वे दावा करते हैं कि 'मूलभूत प्रश्नों से सरोकार न रखना ज़्यादा से ज़्यादा नौकरशाही की प्रवृत्तियां दिखाना है और असल में यह कोई गंभीर गलती नहीं है' और वे समझते हैं कि 'महत्वपूर्ण प्रश्नों से सरोकार रखना खतरनाक है, गौण प्रश्नों से चिपके रहना ज्यादा सुरक्षित है।' चीज़ों को देखने का यह तरीका बिल्कुल गलत है। प्रतिक्रियावादी 'उत्पादक शक्तियों के सिद्धान्त' का खोमचा लगाने वाला लिन पियाओ और उसका गिरोह दावा करता था कि 'राजनीति का मतलब होता है कि किसान खेती का लाभकारी काम करें और मज़दूर अच्छी तरह से अपना काम करें।' उनका आपराधिक लक्ष्य था पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए सर्वहारा वर्ग की तानाशाही को उलट देना। इस प्रकार, अगर हम अपना पूरा समय छोटे ठोस सवालों में खपा दें, अगर हम वर्ग-संघर्ष और दो लाइनों के संघर्ष को आंख मूंदकर देखें, और कान बंद करके सुनें तो हमें इस बात का पूरा खतरा है कि हम धोखा खा जाएं और लम्बे दौर में अध्यक्ष माओ की क्रांतिकारी कार्यदिशा से भटक जाएं, पार्टी और जनता के उद्देश्य को नुकसान पहुंचाएं तथा उन वर्ग शत्रुओं को अनुकूल अवसर मुहैया कराएं जो पूंजीवाद की पुनर्स्थापना की उम्मीद पालते हैं। हम यह कैसे कह सकते हैं कि यह मात्र एक तरह की 'नौकरशाही प्रवृत्ति' की अभिव्यक्ति है? हमें समझना ही होगा कि अगर हम बिना यह देखे कि कार्यदिशा सही है या गलत सिर्फ उत्पादन से सरोकार रखें और तब यदि संशोधनवाद सत्ता में आ जाए यह अगर पार्टी और राज्यसत्ता को हथिया ले, तो भले ही उत्पादन परिमाण और गुणवत्ता में बढ़ता रहे इसके लाभ जमीदारों और पूंजीपति वर्ग द्वारा हड़प लिए जाएंगे और ये संशोधनवाद और पूंजीवाद के लिए एक भौतिक जमीन मुहैया कराएंगे। जब से ख्रुश्चोव-ब्रेझनेव गिरोह सोवियत संघ सत्ता में आया है उन्होंने एक समाजवादी देश को एक सामाजिक साम्राज्यवादी देश में तब्दील कर दिया है, 'उन्होंने आकाश में कृत्रिम उपग्रह छोड़े हैं लेकिन लाल झण्डे को जमीन पर गिरने दिया है' और यह हमारे लिए एक कठोर सबक है। इसीलिए यदि हम अपना सरोकार मूलभूत सवालों वर्ग-संघर्ष और दो लाइनों के संघर्ष से नहीं रखेंगे, अगर हम पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा को भूलेंगे तो हम अंतत: निश्चित रूप से संशोधनवादी मार्ग के ही अनुगामी बनेंगे। हम कैसे कह सकते हैं कि यह 'खतरनाक नहीं है' और 'यह वास्तव में कोई गंभीर गलती नहीं है?'

इन सारी चीज़ों से हम यह देख सकते है कि यह सवाल कि पार्टी कमेटियां बुनियादी सवालों को समझती हैं या नहीं। मात्र सोचने और काम करने के ढंग का सवाल नहीं है, बल्कि यह एक अवस्थिति और कार्यदिशा का सवाल है सिद्धान्त का एक आधारभूत सवाल है। पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व को मजबूत बनाने की खातिर, पार्टी कमेटियों को हर समय और हर परिस्थिति में पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा को दिमाग में रखना चाहिए, तथा वर्ग-संघर्ष और दो लाइनों के संघर्ष के मूलभूत सवालों को गंभीरता से लेना चाहिए। उन्हें यह अवश्य निश्चित कर लेना चाहिए कि अगर जिम्मेदारी भारी हो तो भी मूलभूत सवालों को किनारे नहीं किया गया है और अगर ढेर सारा काम हो तो भी उन पर (यानी मूलभूत प्रश्नों पर-अनु.) समय दिया जाता है। जहां तक मूलभूत प्रश्नों को समझने का सवाल है, उन्हें लगातार अपनी चेतना का स्तर उन्नत करते रहना चाहिए और दसवीं कांग्रेस द्वारा उन्हें सौंपे गये सभी जुझारू कार्यभारों को और अच्छी तरह से अंजाम देने के लिए संघर्ष करना चाहिए।

क्रमश:

क्या अमेरिकी अर्थव्यवस्था भी मेक्सिको की राह पर है

कहते हैं कि विपत्ति कभी अकेले नहीं आती! दुनिया के मजदूरों के विरुद्ध विपत्ति का फरमान जारी करने वाला 'महाबली' अमेरिका आज खुद अपनी काली करतूतों के चपेट में फंसता जा रहा है। 11 सितम्बर '02 के चोट के बाद घटनाओं-दुर्घटनाओं का जो सिलसिला शुरू हुआ है, वह खत्म होने का नाम नहीं ले रहा है। जिन आर्थिक नीतियों को वह शेष दुनिया पर थोप कर तबाही पैदा कर रहा था, उसी की चपेट में आज खुद आ गया है। बड़े-बड़े कारपोरेशन जो अमेरिकी अर्थव्यवस्था की रीढ़ समझे जाते थे, एक-एक करके दिवालिया होते जा रहे हैं। पहले एनरान, फिर वर्ल्डकाम, आई. टी. सेक्टर की कई कम्पनियां, अमेरिकी एयरवेज और तमाम अन्य कम्पनियां। यह सिलसिला अभी भी जारी है। पता यह चला है कि कारपोरेट जगत के कम्पनियों के तथाकथित स्वास्थ्य का रहस्य वास्तविक कारोबार नहीं बल्कि झूठ-फरेब और बेईमानी है। इस बेईमानी की पोल खुलते ही अमेरिकी शेयर बाजार धराशायी हो गया। करीब 2.4 ट्रिलियन डालर (12 हजार अरब रुपये) की पूंजी स्वाहा हो गयी। यह अमेरिका के राष्ट्रीय उत्पादन का 25 प्रतिशत है, जर्मनी के राष्ट्रीय उत्पादन के बराबर है। भारत जैसे देशों के राष्ट्रीय उत्पादन का तो कई गुना है। आर्थिक आंकड़े और तथ्य यह बताते हैं कि शेयर बाजार की यह तबाही 1962, 1987 और 1929 की तबाहियों से बड़ी और गुणात्मक रूप से भिन्न है। पिछली तबाहियों से तो पूंजीवाद उबर गया था लेकिन इस बार कोई रास्ता नहीं मिल पा रहा है।

यह तबाही महज आंकड़ों का खेल नहीं है बल्कि इसका सीधा असर अमेरिकी जनता और वहां के मेहनतकश वर्ग पर पड़ रहा है। शेयर बाजार में जो पैसा डूबा है वह आम निवेशकों का था, जिन्होंने रातों-रात अमीर होने के लालच में अपनी सारी जमा-पूंजी लगा दी थी। इस घटना के बाद वे दिवालिया होकर सड़क पर आ गये। दूसरी ओर बड़े पैमाने पर मज़दूरों-कर्मचारियों की छंटनी की जा रही है। पिछले दो महीनों में इन विशालकाय कारपोरेशनों से लाखों मजदूरों को निकाला गया है, इससे बेरोजगारी की दर कई गुना बढ़ गई है। पूरे अमेरिकी समाज में व्यवस्था के प्रति गुस्सा बढ़ता जा रहा है। राष्ट्रपति बुश, जनता का गुस्सा शान्त करने के लिए रोज टी.वी. चैनलों पर जनता को संबोधित कर रहे हैं और झूठे वायदे कर रहे हैं।

पूंजीवादी व्यवस्था के इस असमाधेय संकट से निपटने के लिए अमेरिकी सरकार ने जुलाई '02 के अंत में दो बिल पास किए हैं। पहला 'फास्ट ट्रैक ट्रेड बिल' दूसरा 'होमलैण्ड सेक्योरिटी डिपार्टमेन्ट बिल'। इन दोनों बिलों के पास हो जाने से आर्थिक एवं आतंरिक सुरक्षा के मामले में राष्ट्रपति बुश को असीमित एवं निरंकुश अधिकार प्राप्त हो गया है। अब उन्हें अपनी कार्रवाईयों के लिए अमेरिकी कांग्रेस के सामने जवाब नहीं देना पड़ेगा। पूंजीवादी जनतंत्र अब खुले तानाशाही की ओर बढ़ रहा है। इसी से अमेरिकी व्यवस्था के संकट का अनुमान लगाया जा सकता है।

अमेरिकी जनता का ध्यान बंटाने के लिए बुश महोदय ने इराक के ऊपर भौंकना शुरू कर दिया है और हमले की धमकी भी दे दी है। लेकिन इस बार उनके पालतू इंग्लैण्ड और अरब के शासक उतनी मुस्तैदी नहीं दिखा रहे हैं। नाटो के अन्य देश भी अपना पल्ला झाड़ने में लगे हुए हैं क्योंकि संकट चौतरफा है।

इन परिस्थितियों का सीधा असर अपने देश पर पड़ रहा है। नई आर्थिक नीतियों के इस दौर मे रुपये का डालर के साथ 'अपवित्र' गठबंधन कायम हुआ है। नई अर्थव्यवस्था में पूंजी का केन्द्रीयकरण हुआ है और बड़े-बड़े कारपोरेशनों का गठन हुआ है। ये कारपोरेशन जालसाजी के मामले में अमेरिका से दो कदम आगे हैं। डालर के पिटने से यहां का पूंजीवाद भी लड़खड़ा रहा है और शेयर बाजार में लगातार गिरावट हो रही है। रोज नये घपले-घोटाले पकड़ में आ रहे हैं। इससे अर्थव्यवस्था पूरी तरह लड़खड़ा रही है।

इससे बचने के लिए देश के शासक वर्ग ने 'पोटा' कानून तो पहले ही बना लिया है, अब श्रम कानूनों में बदलाव करना बाकी रही गया है। ऐसा करके वे पूंजीवाद का सारा संकट मजदूर जनता पर डालेंगे। संकट से बचने का यह तरीका नंये असमाधेय संकटों को जन्म देगा, और अब 'महाबली' से भी सहयोग की उम्मीद नहीं रह गयी है।

ताजा आंकड़ों के मुताबिक अभी तक अमेरिका के दस बड़े कारपोरेशन दिवालिया हो चुके हैं, छोटों की कोई गिनती नहीं है। अर्थशास्त्री बता रहे हैं कि इस प्रक्रिया को अब रोका नहीं जा सकता। वैसे भी अमेरिका दुनिया का सबसे बड़ा कर्जदार देश है, वर्तमान संकट के साथ यदि कर्ज की राशि जोड़ दी जाय तो उसका भविष्य एकदम अंधकारमय दिख रहा है। मजदूर वर्ग के लिए यही उचित मौका है कि वे श्रम की शक्तियों को समेटकर पूंजी के दुर्ग पर निर्णायक हमले की तैयारी में लग जायें।

नई आर्थिक नीतियों के एक दशक के घातक नतीजे : अतिरिक्त मूल्य का दोहन दोगुना बढ़ा

देश के उद्योगपतियों की संख्या 'फिक्की' ने 100 सबसे अधिक मुनाफा देने वाले बड़े उद्योगों में नई आर्थिक नीतियों का श्रम-पूंजी के अनुपात पर पड़ने वाले प्रभाव का एक अध्ययन करवाया। इस अध्यन से कुछ बेहद महत्वपूर्ण नतीजे सामने आये हैं। मालों के उत्पादन में, 1991-1992 में कुल उत्पादन व्यय में मज़दूरी-वेतन का हिस्सा 11 प्रतिशत था। नई आर्थिक नीतियों के लागू होने के एक दशक बाद, 2000-2001 में यह मज़दूरी-वेतन का हिस्सा घटकर 5.6 प्रतिशत रह गया। एक दशक में श्रमशक्ति की कीमत आधी हो गयी।

इन सबसे अधिक मुनाफा देने वाली कम्पनियों में 1988-89 में कुल उत्पादन व्यय रु. 59400 करोड़ था, 2000-01 में यह बढ़कर रु. 3,67,865 करोड़ हो गया। यह वृद्धि 6 गुनी हुई। इसी के साथ, वेतन-मज़दूरी का हिस्सा रु. 6020 करोड़ से बढ़कर रु. 20,468 करोड़ हुआ। यह वृद्धि तीन गुनी हुई। मज़दूरी में गिरावट की दर 1991 से 1996 तक काफी धीमी थी लेकिन आर्थिक नीतियों के दूसरे दौर शुरू हो जाने पर तेज़ दर से गिरावट हुई। 2000-01 में यह पूरे उत्पादन व्यय का मात्र 5.56 प्रतिशत रह गई।

पूंजीपतियों को मुनाफा मज़दूरों के अतिरिक्त श्रम से प्राप्त होता है। इस अतिरिक्त श्रम से पैदा होने वाले अतिरिक्त मूल्य को बढ़ाने के लिए पूंजीपति तरह-तरह की तिकड़में करते रहते हैं। वेतन-मज़दूरी में होने वाली उपरोक्त कमी यह स्पष्ट तौर पर बताती है कि अतिरिक्त मूल्य का दोहन दो गुना हो गया है। जाहिर है यह वृद्धि श्रम की सघनता बढ़ाकर प्राप्त की गई होगी।

नई आर्थिक नीतियों के दूसरे दौर की समाप्ति पर यदि श्रमशक्ति की कीमत घटकर आधी हो गई, तो इन नीतियों के तीसरे दौर में श्रमिक वर्ग पर कितना चोट किया जायेगा, इसका अंदाजा मिलता है। उल्लेखनीय है कि भारत में श्रमशक्ति की कीमत अधिकांश विकसित, विकासशील देशों की तुलना में पहले ही बहुत कम थी। सामान्यत: इन देशों में मज़दूरी-वेतन का हिस्सा कुल उत्पादन व्यय का 20 प्रतिशत के लगभग था, नई व्यवस्था में इसमें थोड़ी कमी जरूर आयी है, लेकिन भारत की तरह अंधेरगर्दी नहीं है। हमारे देश के पूंजीपति वर्ग ने श्रम के लूट और अतिरिक्त मूल्य के दोहन के मामले में बाकी दुनिया को बहुत पीछे छोड़ दिया है। इस लूट के मामले में आजादी के बाद से ही भारतीय पूंजीपति वर्ग बहुत शातिर रहा है।

आर्थिक नीतियों के तीसरे दौर में मुख्यत: श्रम कानूनों में बदलाव होना है। औद्योगिक विवाद अधिनियम, न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम, ठेका मज़दूरी अधिनियम, ट्रेड यूनियन अधिनियम, भविष्य निधि अधिनियम द्वारा मज़दूरों को प्राप्त सीमित अधिकार छीना जाना है। वैसे भी ये अधिकार पूंजीपतियों नौकरशाही और दलाल ट्रेड यूनियनों की तिकड़मों और बेईमानियों के चलते मज़दूरों के 90 प्रतिशत को कभी नहीं मिल पाये, लेकिन इनके बने रहने से पूंजी की शक्तियों को खुलकर खेलने में एक कानूनी बाधा अवश्य थी। वर्तमान सरकार के प्रधानमंत्री ने पिछले महीने उद्योगपतियों की एक बैठक में इस कानूनी बाधा को जल्द से जल्द दूर करने का वचन दे दिया है।

श्रम क़ानूनों की बाधा दूर होते ही इस देश में श्रम के आदिम पूंजीवादी लूट का दौर शुरू हो जायेगा। पूंजीपति वर्ग श्रमशक्ति को उस सीमा तक घटाने की कोशिश करेगा कि मज़दूर वर्ग अपनी इच्छा से न जी सकेगा न मर सकेगा। ऐसे में युद्ध के मैदान में श्रम की शक्तियां और पूंजी की शक्तियां एकदम आमने सामने होंगी। जाहिर है, इन नयी परिस्थितियों का मुकाबला महज ट्रेड यूनियनवादी तरीकों से नहीं किया जा सकता। पूंजी की शक्ति से रियायतें हासिल करने के लिए की जाने वाली मज़दूर वर्ग के अलग-अलग संघर्षों से स्थिति बेहतर नहीं होगी। पूंजी की ताकत को चकनाचूर करने की दिशा में श्रम की शक्तियों को मोड़ना ही होगा, अब कोई और विकल्प नहीं है।

बचपन तबाह करने वालों का स्वांग-बचपन बचाओ

आज दुनिया भर में बचपन बचाने की कवायदें हो रही हैं। तमाम सरकारी तथा गैर सरकारी स्वयंसेवी संस्थाएं अपने वित्तीय महाप्रभुओं की भीख पर बचपन बचाने में युद्धस्तर पर जुटी हुई हैं।

पिछले दिनों अमेरिका के न्यूयार्क शहर में दुनिया भर से बचपन बचाने की चिन्ता से त्रस्त 180 देशों के प्रतिनिधियों ने राष्ट्रसंघ के विशेष अधिवेशन में भाग लिया। इसमें इन प्रतिनिधियों ने बच्चों के यौन-उत्पीड़न, कुपोषण, बाल श्रम, शिक्षा व बच्चों की खरीद फरोख्त पर घड़ियाली आंसू बहाये। सबसे ज़्यादा चिंता बच्चों के अपराधीकरणऔर तीसरी दुनिया के तमाम शोषित-उत्पीड़ित देशों में न्याय के लिए लड़ रहे बच्चों के बचपन बचाने की थी।

इस अधिवेशन के नतीजे के तौर पर दुनिया भर में बचपन तबाह करने वालों में से एक माइक्रोसॉफ्ट कंपनी के मालिक बिल गेट्स ने 5 करोड़ डालर की भीख देकर दुनिया भर के बच्चों के साथ भयंकर मजाक किया और यह मजाक भला वह क्यों न करें? जब इसी अधिवेशन में दक्षिण अफ्रीका में 30 वर्षों तक रंगभेद की लड़ाई लड़ने वाले भूतपूर्व दक्षिण अफ्रीकी राष्ट्रपति नेल्सन मंडेला घुटनाटेकू अंदाज में बचपन बचाने की याचना करते हों।

यह मजाक नहीं तो और क्या है जबकि यूरोप के धनी देशों में सिगरेट का सालाना खर्च 50 अरब डालर और बीयर पर 31 अरब डालर है। आज दुनिया में तीन अरब लोग औसतन दो डालर से भी कम आय में गुजारा कर रहे हैं, जिसमें 1 अरब 20 लाख बच्चे हैं। 'विकासशील' देशों में शिशुओं की मृत्यु की वार्षिक संख्या एक करोड़ उनतीस लाख है। दुनियाभर में प्रतिसप्ताह ढाई लाख बच्चे कुपोषण व अन्य संक्रामक रोगों के शिकार हो मरते हैं। भारत जैसे विकासशील देश में हर 100 बच्चों में से 53 कुपोषण के शिकार हैं। सरकारी आंकड़ों के हिसाब से प्रतिदिन 9 हजार बच्चे मौत के मुंह में चले जाते हैं। इनमें लगभग ढाई लाख एक साल के अंदर तथा लगभग 12 लाख बच्चे 5 साल के भीतर। आज दुनियाभर में बच्चे घरों से लेकर कारखानों में खट रहे है क्योंकि पूरी दुनिया की मुनाफाखोर व्यवस्था को सस्ता से सस्ता खरीदना और महंगा से महंगा बेचना है। हमारे भारत जैसे महान (?) देश के लुटेरे तो उन्हें फिरोजाबाद, भदोही जैसी चूड़ी और कालीन जैसे उद्योगों में, शंकरगढ़ की चूना भट्टियों में 10-12 घंटे रोज खटा रहे हैं जिससे ये बच्चे जवान होने से पहले ही टी.बी. और अन्य सांस की बीमारियों से मर-खप जाते हैं।

इनकी चिंता कितनी जायज है यह इसी बात से पता चलता है कि बाल मज़दूरी के मुद्दे को, बच्चों के यौन शोषण की बहस में दबा दिया गया। हालांकि यौन-उत्पीड़न मामले की तस्वीर पूरी दुनिया में भयावह है। कम उम्र के बच्चे-बच्चियां लगातार यौन-उत्पीड़न के शिकार हो रहे हैं।

इन सारी समस्याओं पर जुगाली करने के बाद इन प्रतिनिधियों ने यह सुझाव रखा कि बच्चों के यौन शोषण को रोकने के लिए, उनके प्रति हुए अपराधों के निपटारे के लिए इन सारे अपराधों को अन्तर्राष्ट्रीय अदालत के दायरे में लाया जाय। यानि की बात जहां की तहां। खिलाड़ी भी वे और रेफरी भी।

दरअसल ऐसे तमाम अधिवेशन और सेमिनार-गोष्ठियां एक अश्लील तमाशे के सिवा और कुछ भी नहीं है। आज पूरी दुनिया में पूंजी के भूमण्डलीकरण का कहर बरपा हो रहा, जिसमें बच्चे, मजदूर, किसान सब तबाह हो रहे हैं। ऐसे में इन नीतियों के पैरोकार और अलहकार अगर उससे होने वाली तबाही पर छाती पीट रहे हैं तो उसका भी जरूर कोई मकसद होगा। दुनिया के सामराजी लुटेरे छाती भी फोकट में नहीं पीटते। इसकी भी वे फीस वसूलते हैं। जैसे कि बचपन बचाने के सवाल पर वे छाती इसलिए पीट रहे हैं कि इससे एक हथकण्डे के रूप में इस्तेमाल कर वे बालश्रम की बदौलत तीसरी दुनिया के सस्ते मालों की अपने बाजारों में घुसपैठ रोक सकें।

बचपन तबाह करने वालों की बचपन बचाने की इस चिन्ता के पीछे यह मक्कारी भी छुपी है कि लोगों को पूंजीवाद के हत्यारे चेहरे को पहचानने से रोका जा सके। मानवतावाद का मुखौटा लगाकर यह काम बखूबी किया जा सकता है। साम्राज्यवाद का यह पाखण्ड आज एक एनजीओ के विश्वव्यापी नेटवर्क के रूप में खूब फलफूल रहा है। बचपन बचाने के इस विश्वव्यापी पाखण्ड से भारत में भी बहुतेरे धन्धेबाज जुड़े हैं। इनमें कैलाश सत्यार्थी का नाम सबसे ऊपर है। बचपन बचाने का पाखण्ड करने वाले ये सभी देवदूत साम्राज्यवादियों के एजेण्ट हैं जिनकी करतूतों का भाण्डा जनता में फुटना ही चाहिए। ये मायामृग की तरह जनसंघर्षों को राह से भटकाते हैं। छद्म रचकर असली निशाने को ओझल कर देते हैं। मेहनतकशों को इनके झांसे में आने से बचना होगा।

अगर सचमुच बचपन बचाना है तो मेहनतकशों को असली निशाने पर वार करने की तैयारी करनी होगी। यानी साम्राज्यवाद-पूंजीवाद के समूचे राक्षसी तंत्र को ही निशाना बनाना होगा। बाजार और मुनाफे पर टिके समूचे ढांचे को ही तहस नहस करना होगा। केवल तभी इस मानवद्रोही व्यवस्था के ध्वंसावशेषों पर एक नया मानवीय समाज बनाया जा सकता है। केवल तभी बचपन बचाया जा सकता है।

धनश्याम

गिरगिट

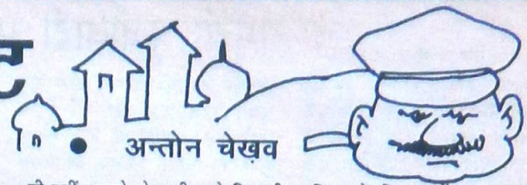

• अन्तोन चेख़व

पुलिस का दारोगा ओचुमेलोव नया ओवरकोट पहने, हाथ में एक बण्डल थामे बाजार के चौक से गुजर रहा है। लाल बालों वाला एक सिपाही हाथ में टोकरी लिये उसके पीछे-पीछे चल रहा है। टोकरी जब्त की गयी झड़बेरियों से ऊपर तक भरी हुई है। चारों ओर खामोशी ... चौक में एक भी आदमी नहीं ... दुकानों व शराबखानों के भूखे जबड़ों की तरह खुले हुए दरवाजे ईश्वर की सृष्टि को उदासी भरी निगाहों से ताक रहे हैं। यहां तक कि कोई भिखारी भी आसपास दिखायी नहीं देता है।

"अच्छा! तो तू काटेगा? शैतान कहीं का!" ओचुमेलोव के कानों में सहसा यह आवाज आती है। "पकड़ लो, छोकरो! जाने न पाये! अब तो काटना मना है! पकड़ लो! आ ... आह!"

कुत्ते के किकियाने की आवाज सुनाई देती है। ओचुमेलोव मुड़ कर देखता है कि व्यापारी पिचूगिन की लकड़ी की टाल में से एक कुत्ता तीन टांगों से भागता हुआ चला आ रहा है। एक आदमी उसका पीछा कर रहा है – बदन पर छींट की कलफदार कमीज, ऊपर वास्कट और वास्कट के बटन नदारद। वह कुत्ते के पीछे लपकता है और उसे पकड़ने की कोशिश में गिरते-गिरते भी कुत्ते की पिछली टांग पकड़ लेता है। कुत्ते की कीं-कीं और वही चीख – "जाने न पाये!" दोबारा सुनाई देती है। ऊंघते हुए लोग गरदनें दुकानों से बाहर निकल कर देखने लगते हैं, और देखते-देखते एक भीड़ टाल के पास जमा हो जाती है मानो जमीन फाड़ कर निकल आयी हो।

"हुजूर! मालूम पड़ता है कि कुछ झगड़ा-फसाद है! सिपाही कहता है।

ओचुमेलोव बायीं ओर मुड़ता है और भीड़ की तरफ चल देता है। वह देखता है कि टाल के फाटक पर वही आदमी खड़ा है, जिसकी वास्कट के बटन नदारद हैं। वह अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाये भीड़ को अपनी लहूलुहान उंगली दिखा रहा है। उसके नशीले चेहरे पर साफ लिखा लगता है, "तुझे मैंने सस्ते में न छोड़ा, साले!" और उसकी उंगली भी जीत का झंडा लगती है। ओचुमेलोव इस व्यक्ति को पहचान लेता है। वह सुनार ख्रूकिन है। भीड़ के बीचोंबीच अगली टांगें पसारे, अपराधी – एक सफेद ग़ेहाउंड पिल्ला, दुबका पड़ा, ऊपर से नीचे तक कांप रहा है। उसका मुंह नकीला है और पीठ पर पीला दाग है। उसकी आंसू भरी आंखों में मुसीबत और डर की छाप है।

"क्या हंगामा मचा रखा है यहां?" ओचुमेलोव कंधों से भीड़ को चीरते हुए सवाल करता है, "तुम उंगली क्यों ऊपर उठाये हो? कौन चिल्ला रहा था?"

"हुजूर! मैं चुपचाप अपनी राह जा रहा था," ख्रूकिन अपने मुंह पर हाथ रख कर खांसते हुए कहता है। "मित्री मित्रिच से मुझे लकड़ी के बारे में कुछ काम था। एकाएक, मालूम नहीं क्यों, इस कमबख्त ने मेरी उंगली में काट लिया ... हुजूर माफ करें, पर मैं कामकाजी आदमी ठहरा ... और फिर हमारा काम भी बड़ा पेचीदा है। एक हफ्ते तक शायद मेरी यह उंगली काम के लायक न हो पायेगी। मुझे हरजाना दिलवा दीजिये। और, हुजूर, यह तो कानून में कहीं नहीं लिखा है कि ये मुए जानवर काटते रहें और हम चुपचाप बरदाश्त करते रहें ... अगर हम सभी ऐसे ही काटने लगें, तब तो जीना दूभर हो जाये ..."

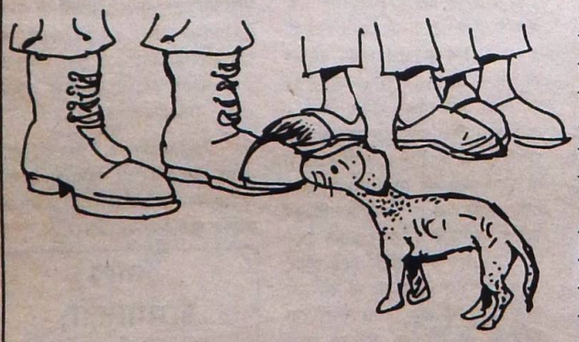

"हुंह ... अच्छा ..." ओचुमेलाव गला साफ करके, त्योरियां चढ़ाते हुए कहता है, "ठीक है ... अच्छा, यह कुत्ता है किसका? मैं इस बात को यहीं नहीं छोड़ूंगा! यों कुत्तों को छुट्टा छोड़ने का मजा चखा दूंगा! लोग कानून के मुताबिक नहीं चलते, उनके साथ अब सख्ती से पेश आना पड़ेगा! ऐसा जुरमाना ठोकूंगा कि दिमाग ठीक हो जायेगा बदमाश का! फौरन समझ जायेगा कि कुत्तों और हर तरह के ढोर-डंगर को ऐसे छुट्टा छोड़ देने का क्या मतलब है! मैं ठीक कर दूंगा, उसे! येल्दीरिन! सिपाही को संबोधित कर दारोगा चिल्लाता है, पता लगाओ कि यह कुत्ता है किसका, और रिपोर्ट तैयार करो! कुत्ते को फौरन मरवा दो! यह शायद पागल होगा ... मैं पूछता हूं यह कुत्ता है किसका?"

"यह शायद जनरल झिगालोव का हो!" भीड़ में से कोई कहता है। "जनरल झिगालोव का? हुंह ... येल्दीरिन, जरा मेरा कोट तो उतारना ... ओफ, बड़ी गर्मी है ... मालूम पड़ता है कि बारिश होगी। अच्छा, एक बात मेरी समझ में नहीं आती कि इसने तुम्हें काटा कैसे?" ओचुमेलोव ख्रूकिन की ओर मुड़ता है। "यह तुम्हारी उंगली तक पहुंचा कैसे? यह ठहरा जरा सा जानवर और तुम पूरे लहीम-शहीम आदमी। किसी कील-वील से उंगली छील ली होगी और सोचा होगा कि कुत्ते के सिर मढ़ कर हरजाना वसूल कर लो। मैं खूब समझता हूं! तुम्हारे जैसे बदमाशों की तो मैं नस-नस पहचानता हूं!"

"इसने उसके मुंह पर जलती हुई सिगरेट लगा दी, हुजूर! बस, यूं ही मजाक में। और यह कुत्ता बेवकूफ तो है नहीं, उसने काट लिया। ओछा आदमी है यह हुजूर!"

"अबे! काने! झूठ क्यों बोलता है? जब तूने देखा नहीं, तो झूठ उड़ाता क्यों है? और सरकार तो खुद समझदार हैं। सरकार खुद जानते हैं कि कौन झूठा है और कौन सच्चा। और अगर मैं झूठा हूं, तो अदालत से फैसला करा लो। क़ानून में लिखा है ... अब हम सब बराबर हैं, खुद मेरा भाई पुलिस में है ... बताये देता हूं ... हां ..."

"बन्द करो यह बकवास!"

"नहीं, यह जनरल साहब का नहीं है," सिपाही गंभीरतापूर्वक कहता है "उनके पास ऐसा कोई कुत्ता है ही नहीं, उनके तो सभी कुत्ते शिकारी पोंटर हैं।

"तुम्हें ठीक मालूम है?"

"जी, सरकार।"

"मैं भी जानता हूं। जनरल साहब के सब कुत्ते अच्छी नस्ल के हैं, एक से एक कीमती कुत्ता है उनके पास। और यह! यह भी कोई कुत्तों जैसा कुत्ता है, देखो न! बिल्कुल मरियल खारिश्ती है। कौन रखेगा ऐसा कुत्ता? तुम लोगों का दिमाग तो खराब नहीं हुआ? अगर ऐसा कुत्ता मास्को या पीटर्सबर्ग में दिखाई दे, तो जानते हो क्या हो? क़ानून की परवाह किये बिना एक मिनट में उसकी छुट्टी कर दी जाये! ख्रूकिन! तुम्हें चोट लगी है और तुम इस मामले को यूं ही मत टालो ... इन लोगों को मजा चखाना चाहिए! ऐसे काम नहीं चलेगा। "

"लेकिन मुमकिन है, जनरल साहब का ही हो ..." कुछ अपने आपसे सिपाही फिर कहता है, "इसके माथे पर तो लिखा नहीं है। जनरल साहब के अहाते में मैंने कल बिल्कुल ऐसा ही कुत्ता देखा था।"

"हां, हां, जनरल साहब का ही तो है!" भीड़ में से किसी की आवाज आती है।

"हुंह ... येल्दीरिन, जरा मुझे कोट तो पहना दो ... हवा चल पड़ी है, मुझे सरदी लग रही है ... कुत्ते को जनरल साहब के यहां ले जाओ और वहां मालूम करो। कह देना कि इसे सड़क पर देख कर मैंने वापस भिजवाया है ... और हां, देखो, यह भी कह देना कि इसे सड़क पर न निकलने दिया करें ... मालूम नहीं कितना कीमती कुत्ता हो और अगर हर बदमाश इसके मुंह में सिगरेट घुसेड़ता रहा, तो कुत्ता तबाह हो जायेगा। कुत्ता बहुत नाजुक जानवर होता है ... और तू हाथ नीचा कर, गधा कहीं का! अपनी गन्दी उंगली क्यों दिखा रहा है? सारा कुसूर तेरा ही है ...

"यह जनरल साहब का बावर्ची आ रहा है, उससे पूछ लिया जाये। ए प्रोखोर! इधर तो आना भाई! इस कुत्ते को देखना, तुम्हारे यहां का तो नहीं है?"

"अमां वाह! हमारे यहां कभी भी ऐसे कुत्ते नहीं थे!"

"इसमें पूछने की क्या बात थी? बेकार वक्त खराब करना है," ओचुमेलोव कहता है, "आवारा कुत्ता है। यहां खड़े-खड़े इसके बारे में बात करना समय बरबाद करना है। कह दिया न आवारा है, तो बस आवारा ही है। मार डालो और काम खत्म!"

"हमारा तो नहीं है," प्रोखोर फिर आगे कहता है, "पर यह जनरल साहब के भाई साहब का कुत्ता है। उनको यह नस्ल पसन्द है ... "

"क्या? जनरल साहब के भाई साहब आये हैं? व्लीदीमिर इवानिच?" अचम्भे से ओचुमेलोव बोल उठता है, उसका चेहरा आह्लाद से चमक उठता है। "जरा सोचो तो! मुझे मालूम भी नहीं! अभी ठहरेंगे क्या?"

"हां ..."

"जरा सोचो, वह अपने भाई से मिलने आये हैं ... और मुझे मालूम भी नहीं कि वह आये हैं। तो यह उनका कुत्ता है? बड़ी खुशी की बात है। इसे ले जाओ ... कुत्ता अच्छा ... और कितना तेज़ है ... इसकी उंगली पर झपट पड़ा! हा-हा-हा ... बस-बस, अब कांप मत। गुर्र-गुर्र ... शैतान गुस्से में है ... कितना बढ़िया पिल्ला है ..."

प्रोखोर कुत्ते को बुलाता है और उसे अपने साथ ले कर टाल से चल देता है। भीड़ ख्रूकिन पर हंसने लगती है।

"मैं तुझे ठीक कर दूंगा," ओचुमेलोव उसे धमकाता है और अपना ओवरकोट लपेटता हुआ बाजार के चौक के बीच अपने रास्ते चल देता है।

समूची पूंजीवादी सभ्यता को ही निशाने पर रखना होगा

(पेज 1 से आगे)

वाले, तमाम हवाला कारोबारी अब चैन की बंसी बजा रहे होंगे। 'फेरा' फौजदारी कानून था जिसके तहत विदेशों में सम्पत्ति रखने पर पाबन्दी थी। दोषी पाये जानेपर बिना नोटिस जेल भेजा जा सकता था और पांच गुना जुर्माना भरना पड़ता था। साथ मुलजिम पर ही बेगुनाही का सबूत देने की जिम्मेदारी थी। इसकी जगह आया 'फेमा' दीवानी कानून है। इसके तहत अब विदेशों में भी सम्पत्ति रखी जा सकती है। जुर्म साबित करने की जिम्मेदारी अब प्रवर्तन निदेशालय पर डाल दी गयी है। कारण बताओ नोटिस के बिना अब जेल नहीं भेजा जा सकता और जुर्माना भी सिर्फ तीन गुना भरना होगा। यह विदेशी मुद्रा के लेन-देन में होने वाली गैर कानूनी लूट को कानूनी बना देने की जुगत है। हवाला कारोबारियों के हाथ अब खुले हो गये हैं। साथ ही सतीश शर्मा, हिन्दुजा बन्धु, चन्द्रास्वामी, जैन बन्धुओं और अभिषेक वर्मा जैसे लोगों के बेदाग बरी होने के रास्ते भी खुल गये हैं।

यूं भी देश की न्यायपालिका की महिमा ऐसी है कि भ्रष्टाचार के तमाम आरोपी अगर बदकिस्मती से निचली अदालत के चंगुल में फंस भी गये तो ऊपर की अदालतों से ये बाइज्जत बरी हो जाते हैं। जयललिता का उदाहरण सबसे जीता जागता है। इसी तरह नरसिंह राव भीसांसद रिश्वत काण्ड में बरी हो गये हैं। आगे लालू प्रसाद, सुखराम आदि भी बरी हो जायेंगे। देश की न्यायपालिका की बलिहारी ऐसी कि हालात के मारे छोटे-मोटे चोर उचक्के तो बिना मुकदमे का फैसला हुए सालों साल जेल में सड़ते रहते हैं और अपराधियों के सिरमौर जनसेवक बनकर सीना ताने घूमते रहते हैं। देश की गरीब मेहनतकश आबादी के लिए कानून के सामने बराबरी का हक कागज पर पोती गयी रोशनाई से अधिक कुछ नहीं है। आखिर हो भी कैसे सकता है जब **'बने हैं अहले हवस मुद्दई भी, मुंसिफ भी, किसे वकील करें, किससे मुंसिफी चाहें।'**

तमाम जनप्रतिनिधियों, अफसरों और पूंजीपतियों की गैरकानूनी लूट का यह हिस्सा इतना बड़ा है कि इससे आबादी को बहुत सी बुनियादी समस्याओं से छुटकारा दिलाया जा सकता है। आकड़े सामने आ चुके हैं कि अकेले काले धन की समान्तर अर्थव्यवस्था सफेद धन की अर्थव्यवस्था से बड़ी हो चुकी है। अफसरशाही इस गैरकानूनी लूट में कितने गहरे धंसी हुई है यह पंजाब लोकसेवा आयोग के पूर्व अध्यक्ष रविन्दर पाल सिंह सिद्धू की करतूतों का भाण्डा फूटने से बार फिर उजागर हुआ है। सिद्धू का केस एक पैमाना है इस लूट की गहराई और फैलाव नापने का। सिद्धू ने अपने पांच वर्ष के कार्यकाल में शासन प्रशासन में 3446 नियुक्तियों के जरिये 100 करोड़ रुपये से अधिक कमाये। इसमें से 16 करोड़ रुपये तो नकद बरामद किये गये जो सुखराम के पास से बरामद किये गये पैसे से भी ज़्यादा है।

दरअसल यह गैर कानूनी लूट तो जनता की उस लूट का एक बेहद बेहद छोटा हिस्सा है जो कानूनी है, संविधान सम्मत है। यानी मेहनतकश जनता के भ्रम को मुनाफे में ढालकर देशी-विदेशी पूंजीपतियों की तिजोरियां भरने का कानूनी कारोबार ही लूट की वह बुनियाद है जिस पर तमाम किस्म की गैरकानूनी लूट टिकी हुई है। दरअसल सच तो यह है कि समूची पूंजीवादी सभ्यता ही लूट और अपराध की बुनियाद पर टिकी हुई है। मजदूरों के महान नेता और शिक्षक **कार्ल मार्क्स** ने अपनी प्रसिद्ध रचना **अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त** में पूंजीवादी सभ्यता और अपराधों के रिश्तों पर एक दिलचस्प टिप्पणी की है (देखिये इसी अंक में इसी पृष्ठ पर प्रकाशित **पूंजीवादी सभ्यता और अपराध** शीर्षक टिप्पणी।

पूंजीवादी सभ्यता और अपराध के इस रिश्ते को बखूबी समझना मेहनतकशों के लिए बेहद जरूरी है। खासकर उस अपराध को समझना जो पूंजीवादी कानून-संविधान की नजर में अपराध है ही नहीं। यह पूंजी की कानूनी लूट ही है जिसके चलते करोड़ों की तादाद में मजदूर छंटनी तालाबन्दी का शिकार हो दर बदर भटक रहे हैं। गरीब किसान अपनी जगह जमीन से उजड़कर औद्योगिक महानगरों में मारे मारे फिर रहे हैं। लेकिन यहां भी उन्हें दो जून की रोटी भी नहीं मिल पा रही है। सरकारें, संसद-विधानसभाएं और अदालतें सभी पूंजी की इस कानूनी लूट की हिफाजत में खड़ी हैं। ऐसे में समझा जा सकता है कि कानूनी लूट की बुनियाद पर टिकी यह व्यवस्था गैरकानूनी लूट को भला किस तरह रोक पायेगी। अपराधी खुद अपने खिलाफ फैसले क्यों सुनायेंगे भला!

चेहरा चमकाने की फूहड़ कोशिश

आज भ्रष्टाचार के जो मामले उजागर हो रहे हैं वे लुटेरों की आपसी कुत्ता घसीटी का नतीजा हैं। दरअसल पूंजीवादी राजनीतिज्ञों की जमात तो आज कुत्तों से भी गयी बीती हो चुकी है। कुत्ते कम से कम एक दूसरे की हड्डियों को नोचते घसीटते नहीं। पूंजीवादी राजनीति को अपराधियों से मुक्त करने के नाम पर चुनाव आयोग और सुप्रीम कोर्ट जो कवायद कर रहे हैं वह पूंजीवादी राजनीति के फोड़े-फुंसियों को सुगन्धित पाउडर पोतकर ढंकने की कोशिश है। लेकिन जब फोड़े-फुंसियों से मवाद टप-टप चू रहा हो तो पाउडर पोतने से चेहरा और भी घिनौना ही होगा। यूं चुनाव आयोग वे आला अदालत की इस कवायद पर तमाम चुनावी दलों ने जो रुख अख्तियार किया है वह भी उनकी परम बेहयाई का एक और नमूना भी है दरअसल आज की पूंजीवादी राजनीति और अपराध के रिश्ते को भी पूंजीवादी सभ्यता और अपराध के आम समीकरण से आसानी ने समझा जा सकता है।

आज देश की पूंजीवादी राजनीति और अपराध का रिश्ता किन खतरनाक हदों तक पहुंच चुका है इसका सबसे जलता हुआ उदाहरण गुजरात है। राष्ट्रवाद और हिन्दू धर्म की रक्षा के नाम पर सामूहिक नरसंहार रचाने वालों के गिरोह का एक सरगना सीना ताने हिन्दू समाज का नया नायक बनकर राजपाट चला रहा है। मानवता के हत्यारों का यह पूरा 'परिवार' खून की अच्छी बारिश में मतदान की लहलहाती फसल के सपने देख रहा है। हिन्दुओं के हितों और देश की सभ्यता-संस्कृति के ये स्वयंभू रक्षक आज देश को हिटलरकालीन जर्मनी में हुए जघन्य मानवता विरोधी अपराधों को भी मात देने पर आमादा है।

बेबसी छोड़ो, बुनियाद पर हमले करने की तैयारी करो

आज देश की पूंजीवादी राजनीति की पतनशीलता समूचे पूंजीवादी तंत्र की पतनशीलता का एक आइना है। सभी चुनावी राजनीतिक दल, समूची अफसरशाही, संसद-विधानसभाएं न्यायपालिका यानी देश की पूंजीवादी व्यवस्था के सभी अंग पतनशीलता के उस मुकाम पर पहुंच चुके हैं जब इसे बयान करने के लिए मुहावरे नाकाफी हो चुके हैं। इसके लिए अब किसी अतिश्योक्ति अलंकार के सहारे की जरूरत नहीं। लेकिन परेशान करने वाली बात यह है कि धीरे-धीरे लोग घपलों घोटालों-भ्रष्टाचार ही नहीं तमाम पूंजीवादी कानूनी-गैरकानूनी अपराधों के भी आदी होते जा रहे हैं। शायद यह लोगों की बेबसी ही है कि वे इसे अपनी नियति मान चुके हैं।

आज लोगों की यही बेबसी, यही विकल्पहीनता पतित पूंजीवादी व्यवस्था की ताकत बनी हुई है। इसलिए लोगों को इस बेबसी से बाहर आना ही होगा। आगे कदम बढ़ाना ही होगा। अगर तरह-तरह के घपलों-घोटालों-अपराधों को मिटाना है तो समूची पूंजीवादी सभ्यता को ही निशाने पर रखना होगा क्योंकि यह अपराध की कोख से ही पैदा हुई है। इसलिए हमें बुनियाद पर ही हमले की तैयारी करनी होगी। बेशक यह कठिन संघर्ष की डगर है। पर मुश्किल यह है कि कोई आसान रास्ता हमारे सामने मौजूद नहीं। तो फिर बेबसी में जीने से क्या बेहतर नहीं कि जोखिम भरे रास्तों पर सफर की तैयारी की जाये।

पूंजीवादी सभ्यता और अपराध

कार्ल मार्क्स

दार्शनिक विचारों को को जन्म देता है, कवि कविताओं को, पादरी उपदेशों को, प्रोफेसर संक्षिप्त संग्रहों को, आदि-आदि। अपराधी अपराधों को जन्म देता है। उत्पादन की सबसे बाद वाली इस शाखा तथा पूरे समाज के बीच जो सम्बन्ध है उसे यदि हम किंचित अधिक समीप से देखें तो हमें बहुत से पूर्वग्रहों से मुक्ति मिल जायेगी। अपराधी केवल अपराधों को ही नहीं, बल्कि आपराधिक (फौजदारी) कानून को भी जन्म देता है, और उसके साथ-साथ उस प्रोफेसर को भी जो फौजदारी कानून पर लेक्चर देता है। इन सबके अलावा, इन अनिवार्य संक्षिप्त संग्रहों को भी वह जन्म देता है जिनमें वही प्रोफेसर अपने लेक्चरों को शामिल करके 'मालों' के रूप में बिक्री के लिए आम बाजार में ले जाता है। इससे उस निजी आनन्दानुभूति के अलावा, जो -जैसा कि एक अत्यन्त योग्य गवाह, श्री प्रोफेसर राशेर हमें (बतलाते हैं) -संक्षिप्त संग्रह की पाण्डुलिपि से स्वयं उसके जन्मदाता को प्राप्त होती है, राष्ट्रीय धन-सम्पदा की भी अभिवृद्धि होती है।

इसके अतिरिक्त, अपराधी पुलिस, फौजदारी कानून की व्यवस्था, कांस्टेबुलों, जजों, जल्लादों, जूरियों, आदि के पूरे लवाजमे को भी जन्म देता है, और काम-काज की ये समस्त विभिन्न दिशाएं, जो श्रम के सामाजिक विभाजन की भी अपने ही बराबर अनेक कोटियों को जन्म देती हैं, मानवीय साहस की विविध क्षमताओं को विकसित करती हैं, नयी-नयी आवश्यकताओं तथा उनकी संतृप्ति करने की नयी-नयी विधाओं की सृष्टि करती हैं अकेले यंत्रणा ने ही नाना प्रकार के अत्यधिक विलक्षण यांत्रिक आविष्कारों को जन्म दे दिया है और अपने आलों को तैयार करने के लिए अनेक सामान्य शिल्पियों (कारीगरों-सं.) को काम में लगा दिया है।

अपराधी एक प्रकार का प्रभाव पैदा करता है जो स्थिति के अनुसार, आंशिक रूप से नैतिक और आंशिक रूप से त्रासदीपूर्ण होता है, और इस भांति, जनसाधारण की नैतिक तथा सुरुचिपूर्ण भावनाओं को जागृत करके वह (समाज की-सं.) एक -'सेवा' करता है। वह न केवल फौजदारी कानून के सम्बन्ध में संक्षिप्त संग्रहों को, न केवल आपराधिक संहिताओं (विधि संग्रहों-सं.) और उनके साथ-साथ, इस विषय से संबंधित विधायकों को जन्म देता है, बल्कि कला, ललित साहित्य, उपन्यासों तथा यहां तक कि त्रासदियों को भी जन्म देता है- न केवल मुलनर के **'शब्द'** (निर्दोष) तथा शिलर के **'राउबेर'** (डाकू) जैसे नाटकों को, बल्कि (सोफोक्लीज के) **'ओडीपस'** तथा (शेक्सपियर के) **'रिचर्ड द थर्ड'** (तीसरे रिचर्ड) जैसे नाटकों को भी जन्म देता है। पूंजीवादी जीवन की एकरसता तथा दैनन्दिन की सुरक्षा-भावना को अपराधी भंग करता है। इस प्रकार, वह उसे स्फूर्ति-हीनता की दशा से दूर रखता है तथा उस आकुलतापूर्ण तनाव और स्फूर्ति को भी पैदा करता है जिसके बिना प्रतियोगिता की उत्तेजना भी कुन्द हो जायगी। इस प्रकार वह उत्पादक शक्तियों को प्रोत्साहन प्रदान करता है। अपराध श्रम की मण्डी से अतिरिक्त जनसंख्या के एक अंश को अपने साथ घसीट ले जाता है और इस भांति श्रमिकों के बीच कार्य के लिए चलने वाली प्रतिद्वंद्विता को कम कर देता है- जिससे कि किसी हद तक मजदूरी न्यूनतम से नीचे गिरने से रुक जाती है। इसी जनसंख्या का एक दूसरा अंश अपराध का मुकाबला करने के कामों में लग जाता है। इस तरह

अपराधी उन प्राकृतिक 'प्रतिभारों' में से एक का काम करता है जो (समाज में-सं.) एक सही सन्तुलन स्थापित करने में सहयोग देते हैं तथा 'उपयोगी' धंधों की एक पूरी श्रृंखला पैदा कर देते हैं।

उत्पादक शक्ति के विकास पर अपराधी को जो प्रभाव पड़ता है उसे सविस्तार बतलाया जाता है। अगर चोर न होते तो क्या यह संभव था कि इतने अच्छे ताले बन सकते जितने कि आज मिलते है? अगर जालिए न होते तो क्या यह सम्भव था कि बैंकों के नोट उस उत्कृष्टता को प्राप्त कर लेते जो आज उनमें दिखलायी देती है? व्यापारिक कार्यों में यदि धोखाधड़ी न की जाती होती तो क्या यह संभव था कि साधारण वाणिज्य के क्षेत्र में अनुवीक्षक यन्त्र (खुर्दबीन) को प्रवेश मिल जाता (देखिए बैबेज)? व्यावहारिक रसायनशास्त्र उत्पादन के लिए सच्चे उत्साह का जितना ऋणी है उतना ही ऋणी क्या वह मालों की मिलावट तथा उसका पता लगाने के प्रयासों का नहीं है? सम्पत्ति के ऊपर हमले करने के नित्य नये-नये तरीकों को ईजाद करके, अपराध बचाव के भी नये-नये तरीकों को भी वह निरंतर जन्म देता रहता है, और, इसलिए, वह भी उतना ही उत्पादक है जितनी कि मशीनों के आविष्कार के लिये हड़तालें होती हैं। और यदि निजी अपराधों की दुनिया को छोड़ दिया जाय तो, क्या यदि राष्ट्रीय अपराध न होते तो विश्व-बाजार की कभी उत्पत्ति हो सकती थी? दरअसल तो, क्या राष्ट्रों का भी उदय हो सकता था? और क्या, आदम के ही समय से पाप का वृक्ष साथ ही साथ ज्ञान का भी वृक्ष नहीं रहा?

मान्देविली ने अपना रचना 'मधुमक्खियों की कथा' (1705)में इस बात को बहुत पहले ही सिद्ध कर दिया था कि हर सम्भव प्रकार का धंधा उत्पादक होता है। इस सम्पूर्ण तर्क की दिशा को व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा था :

'इस संसार में जिसे हम बुराई कहते हैं, चाहे वह नैतिक हो चाहे प्राकृतिक, वह वास्तव में वह महान सिद्धांत है जो हमें समाज-प्रिय प्राणी बनाता है, वही बिना किसी अपवाद के, समस्त व्यवसायों तथा सेवा-नियोजनों का भी ठोस आधार, जीवन और अवलम्ब है (...) समस्त कलाओं और विज्ञानों के वास्तविक मूल स्रोतों को भी उसी में ढूंढा जाना चाहिए, और (...) ज्यों ही बुराई का अंत हो जायगा त्यों ही समाज भी यदि पूर्णतया विघटित नहीं, तो दूषित तो हो ही जायगा। (द्वितीय संस्करण, लन्दन, 1723, पृष्ठ 428) (48)

फर्क केवल यह है कि, पूंजीवादी समाज के अधकचरे हिमायतियों की अपेक्षा, मान्देविली निस्सन्देह अत्यधिक साहसी तथा ईमानदार था।

न्याय असमानता, शोषण-दमन के विरुद्ध विद्रोह न्यायसंगत है!

विद्रोह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।

विद्रोह करो!

विद्रोह से क्रान्ति की ओर आगे बढ़ो!

गरीब जनता पर सूखे की मार, मुनाफाखोर व्यवस्था है इसकी जिम्मेदार

(बिगुल संवाददाता)

दिल्ली। देश के 12 राज्यों को सरकारी तौर पर सूखाग्रस्त घोषित किया जा चुका है। अकाल और भूख का साया मंडरा रहा है। करोड़ों रुपये की सरकारी राहत की घोषणा हो चुकी है यानी एक और घोटाले की जमीन तैयार है। एक तरफ भयंकर सूखा पड़ा है तो दूसरी तरफ 9 राज्यों में लगभग 55 जिले बाढ़ की चपेट में हैं। सरकारी सूखाग्रस्त गढ़वाल के टिहरी जिले में मूसलाधार बारिश और बादल फटने से करीब 40 लोगों की जान चली गई है। अब तक बाढ़ के कारण देश में करीब 16,00 घर नष्ट हो चुके हैं। करीब 400 लोग बाढ़ और बारिश में अपना जीवन गंवा चुके हैं। सूखे से होने वाली तबाही का असली मंजर तो आने वाले दिनों में दिखेगा।

सूखे और बाढ़ के बीच यह सवाल फिर उठ खड़ा हुआ है कि बेहतर जल प्रबंध की सरकारी योजनाओं पर आज तक अमल क्यों नहीं हुआ? आजादी के पचपन साल बीतने के बाद भी स्थिति यह है कि मानसून देर से आता है तो हाहाकार मच जाता है। या यूं कहें कि हाहाकार मचाया जाता है। ऐसा माहौल बना दिया गया है कि सूखे के कारण तबाह-बरबाद आम गरीब आबादी सरकार से फरियाद करे तो सरकार का दो टूक जवाब होगा-हम क्या करें यदि मानसून ही नहीं आया? सूखा जहां एक ओर आम जन के लिए तबाही-बर्बादी लेकर आया है, वहीं भ्रष्ट सरकार के लिए एक संकटमोचक नुस्खा। अब एक अरसे तक सरकार बढ़ती महंगाई, बेरोजगारी, गरीबी के लिए सूखे का बहाना बनाती रहेगी। सूखा राहत कार्यों से उसके भ्रष्टाचारी दल-बल को राहत पहुंचेगी। आर्थिक सुधारों को तेज़ करने का नया बहाना मिलेगा, उसके साम्राज्यवादी आकाओं के एन.जी.ओ. कुकुरमुत्तों को पनपने का अनुकूल माहौल मिलेगा। सूखे ने जहां एक ओर गरीब मेहनतकश जनता को भूख, अकाल, मौत और खौफ के साये में ढकेल दिया है वहीं दूसरी ओर अमीर वर्ग की ऐय्याशियां बदस्तूर हैं। कफनखसोटों के चेहरे पर वहीं संतोष का भाव है, जो एक भरे पेट सुअर के चेहरे पर रहता है।

विज्ञान और तकनोलॉजी में विकास के बड़े-बड़े दावे करने वाली भारत सरकार अपने जनविरोधी विकास के दुष्परिणामों और अपने कुकृत्यों को छिपाने के लिए सूखे को प्राकृतिक आपदा घोषित कर रही है। हकीकत यह है कि उन्नत विज्ञान और तकनोलॉजी के दम पर ऐसी योजनाएं बनायी जा सकती हैं कि मानसून न आने, सूखा पड़ने के बावजूद उचित जल प्रबंधन से खेती और पशुपालन का काम सुचारू रूप से चल सके। बाढ़ आने पर अतिरिक्त पानी को दूसरे क्षेत्रों की तरफ भेज कर विभीषिका को टाला जा सके। ऐसी योजनाएं हिन्दुस्तान में भी बनीं लेकिन वे ठंडे बस्ते में डाल दी गईं। कारण स्पष्ट है कि हिन्दुस्तान की सरकारों ने इसे अमली रूप देने का कोई प्रयास नहीं किया। जाहिर है कि देश के अमीरों के हितों की चिंता करने वाली सरकारें इन विशाल योजनाओं पर क्यों काम करती हैं?

मानसून न आने के बावजूद सूखा लाइलाज नहीं है। गरीब किसान सूखे के कारण नहीं, बल्कि पूंजीवादी विकास की सरकारी नीतियों के कारण तबाह हो रहा है। आज एक आम किसान भी बाजार के हिसाब से फसल उगाने को मजबूर है। उसे बाजार की ताकतों ने अपना गुलाम बना लिया है। वह उनके अनुसार फसल उगाता है। जल संग्रहण के पुराने तौर तरीके खत्म होते जा रहे हैं, नये तरीके सरकारी नीतियों में शामिल नहीं है। तमाम क्षेत्रों में किसान ऐसी फसलें बाजार के दबाव में उगा रहे हैं जो उस क्षेत्र की मिट्टी और भूजल के अनुकूल नहीं हैं। उन क्षेत्रों में जल-संग्रहण की व्यवस्था नहीं की जाती है, उसके बावजूद सरकार उन्हें ऐसी फसलें उगाने को प्रोत्साहित करती हैं। यदि मानसून का मिजाज बिगड़ जाता है तो यही सरकारें किसानों को नसीहत देने लगती हैं कि कम पानी वाली फसलें उगाया करो।

पूंजीवादी विकास की प्रकृति ऐसी है कि जहां पर तुरन्त ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफा हो, वहां पैसा लगाओ, उसी हिसाब से योजनाएं बनाओ। आधी-अधूरी आजादी के पचपन सालों ने यह साबित कर दिया है कि देश पूंजीवादी विकास के रास्ते पर अग्रसर है। कृषि में भी जो तबाही - बरबादी दिखाई पड़ रही है वह इसी पूंजीवादी विकास का नतीजा है। प्राकृतिक आपदाएं अमीर और गरीब में भेद नहीं करतीं, लेकिन सूखा तो अमीर और गरीब में भेद कर रहा है। सूखे से गरीब किसान तबाह होंगे, व्यापक मेहनती आबादी भुखमरी, गरीबी, बेरोजगारी का सामना करेगी। जाहिर है यह सूखा पूंजीवादी विकास की जनविरोधी योजनाओं के कारण आपदा बना हुआ है। सूखे से निबटने के लिए इस मुनाफाखोर पूंजीवादी व्यवस्था को निशाना बनाना पड़ेगा। सूखे की समस्या का स्थायी समाधान यही है कि पूंजीवादी व्यवस्था के खात्मे के लिए कमर कसी जाय।

महानगरों से ग़रीबों की बस्तियां उजाड़कर शासक वर्ग अपने भविष्य की सुरक्षा कर रहा है

(बिगुल संवाददाता)

आज सरकार देश भर के महानगरों को सुन्दर बनाने और प्रदूषण मुक्त करने के नाम पर इनमें बसी झुग्गी बस्तियों को उजाड़कर दूरदराज बसा रही है। इसी तरह की प्रक्रिया पिछले कुछ वर्षों से दिल्ली विकास प्राधिकरण भी चला रहा हैं पहले से ही तबाद-बर्बाद इन लोगों को अपनी जीविका और रहन-सहन से इतना दूर बसाया जा रहा है कि इनको जो भी थोड़ी बहुत जन सुविधाएं, जैसे शिक्षा, यातायात, पानी इत्यादि उपलब्ध थीं उससे ये वंचित कर दिये गये हैं। पिछले 20-25 साल से अपनी जगह पर किसी तरह व्यवस्थित हुए इन लोगों को तमाम पुनर्वास नियमों की धज्जियां उड़ाकर नये स्थानों पर बसाया गया है, या इन्हें भाग्य भरोसे छोड़ दिया गया है।

सीजीओ काम्प्लेक्स की आलीशान इमारत का सौंदर्य बचाये रखने के नाम पर सूचना प्रौद्योगिकी भवन को अग्निकाण्ड से बचाने के नाम पर, नये सचिवालय की खूबसूरती को बट्टा न लगने के लिए प्लेयर बिल्डिंग को आईटीओ से विस्थापित कर दिया गया है। कहीं पुलिस के लिए रिहायशी कालोनी बनाने के नाम पर कहीं मेट्रो रेल प्रोजेक्ट के कारण, कहीं दूतावास की बिल्डिंग बनाने के चलते तथा अमीरों, नौकरशाहों, पूंजीपतियों के आलीशान पार्क बनाने के नाम पर उजाड़ दिया गया है। इनमें महिपालपुर, बसंतकुंज, समालका और मयूर बिहार फेज़-एक के कैंप प्रमुख है। जाहिर है इन इलाकों में रहने वाले धनाढ्यों के लिए दिल्ली महानगर का सौन्दर्यीकरण करने की इकतरफा मुहिम चल रही है जिससे मेहनतकश अवाम विस्थापन की मार झेल रहा है।

इन विस्थापितों के लिए बसाई गयी कालोनियों में स्वर्ण जयंती विहार, टिकरी पुनर्वास कालोनी, नरेला सेक्टर 6, होलंबी कला फेज़-1 व 2, होलंबी खुर्द, मैट्रो विहार, भलस्वा पुर्नवास कालोनी, रोहिणी सेक्टर 24,25 और 26, पप्पन कला सेक्टर 15-16, हस्ताल,बक्कर वाला फेज़-1 और 2, सरिता विहार और मदनपुर खादर मुख्य हैं। जिन्हें दिल्ली का भूगोल पता है वे जानते हैं कि ये सारे स्थान दिल्ली महानगर के छोरों पर हैं। इन विस्थापितों में 15-20 हज़ार बच्चे मिडिल और प्राइमरी तथा केन्द्र शासित स्कूलों में पढ़ रहे थे। आर्थिक उदारीकरण की नीतियों से पहले ही तबाह इनके माता-पिता रोजगार खात्मे की ओर है। जिसका इन बच्चों के भविष्य पर सीधा असर पड़ रहा है।

यह समस्या महज पर्यावरणीय नहीं है कि इसका खामियाजा सिर्फ मज़दूर और निम्न मध्य वर्ग ही चुकाये। यह आर्थिक भूमंडलीकरण की नीतियों का परिणाम है। जिस तरह इन नीतियों का कहर मेहनतकश अवाम पर बरपा हो रहा है उससे जनता धीरे-धीरे अपने दुश्मन को पहचानना शुरू कर चुकी है। आबादी के बढ़ने का दोष गिनाकर उसे ज्यादा दिनों तक भरमाया नहीं जा सकता। वह समझ रही है कि इस पर्यावरण विनाश का जिम्मेदार कौन है। वह अपने रोजमर्रा के जीवन अनुभवों से सीख रही है कि कौन इन शहरों का विनाश कर रहा है और कौन साफ-सफाई कर रहा है। कौन मिल-कारखानों, खेत-खलिहानों में जीवन की जरूरत का सामान पैदा कर रहा है और कौन हराम की रोटियां तोड़ रहा है। इस नफरत और गुस्से का सैलाब फट पड़ने से पहले शासक पूंजीपति वर्ग अपने भविष्य की सुरक्षा के लिए कानूनी धोखाधड़ी करके बेदखल कर रहा है।

अगर इस विस्थापन की समस्या को हम जीवन की व्यापक बुनियादी समस्या से जोड़ कर नहीं देखते हैं तो यह हमारी भयंकर भूल होगी। जिन इलाकों को विकास प्राधिकरण ने खाली कराया हैं उन पर गौर करने से पता चल जाता है कि शासक वर्ग अपना सुरक्षा घेरा मजबूत कर रहा है। ऐसे में अब हमें भी अपने भविष्य की सुरक्षा की तैयारी तेज़ कर देनी चाहिए। नये सिरे से मेहनतकशों को अपनी आजादी की लड़ाई की तैयारी में देर नहीं करनी चाहिए।

तिरासी हज़ार करोड़ रुपये की लूट

लुटेरे बने हुए हैं देश के भाग्यविधाता

(बिगुल संवाददाता)

दिल्ली। वित्त मंत्री जसवन्त सिंह को आखिरकार स्वीकार करना पड़ा कि उद्योगपतियों ने कर्ज के नाम पर बैंकों के 83,000 करोड़ रुपयों को लूट लिया है। इस कारण बैकिंग व्यवस्था बुरी तरह चरमरा गई है, जिसका सीधा असर अर्थव्यवस्था पर पड़ रहा है। इस लूट को एनपीए यानि गैर निष्पादित आस्तियां कहा जाता है। उद्योगपतियों को कर्ज के रूप में दी गई यह राशि बैंकों को वापस हो पायेगी, इसकी उम्मीद नहीं है। बैंकों और अन्य वित्त संस्थानों द्वारा इस तरह दिये गये कर्ज की राशि कुल मिलाकर एक लाख दस हज़ार करोड़ रुपये से अधिक बैठती है। यह विशालकाय धनराशि मेहनतकश जनता के खून पसीने की कमाई का वह हिस्सा है जो उसने बूंद-बूंद कर छोटी-छोटी बचतों के रूप में बैंकों में जमा किया था, उसे भी मुनाफाखोर हड़पने पर आमादा हैं।

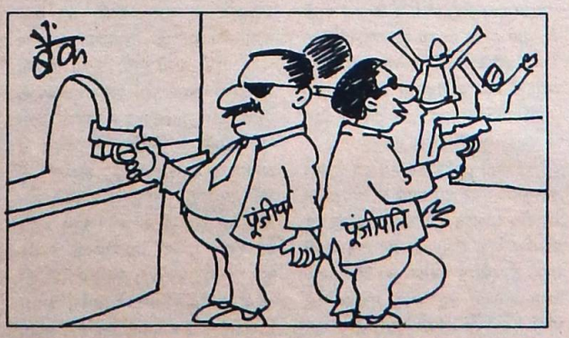

सरकारी बैंकों से 83,000 करोड़ रुपये लूटने वाले अपराधी आज खुलेआम घूम रहे हैं। 'एक तो चोरी, ऊपर से सीनाजोरी' करने वाले ये लुटेरे और इनकी पूरी जमात मेहनतकशों को नैतिकता का पाठ पढ़ाती है। इन्हें जरा भी शर्म नहीं आती जब ये वातानुकूल सभागारों में बैठकर मजदूरों को कोसते हैं। इन्हीं लुटेरों के संगठन लम्बे अरसे से बैंकों के निजीकरण और कर्मचारियों की छंटनी की मांग करते रहे हैं। इन्हीं की मांग पर सरकार ने बैंक कर्मचारियों की छंटनी करने का अभियान चलाया है। विदेशी बैंकों को बैंकिंग क्षेत्र में प्रवेश दिया जा चुका है। राष्ट्रीयकृत बैंकों को निचोड़कर अपना साम्राज्य खड़ा करने के बाद कफनखसोट सरमायेदार बैंकों के निजीकरण की वकालत कर रहे हैं।

यह सर्वविदित है कि 1947 में जब देश को आधी-अधूरी आजादी मिली थी तो हिन्दुस्तान के पूंजीपतियों की यह बूते की बात नहीं थी कि वे अपने दम पर उद्योगधंधों का विकास कर सकें, एक बुनियादी ढांचा खड़ा कर सकें। इसी वजह से समाजवाद के नारे को उछालते हुए मिश्रित अर्थव्यवस्था वाले विकास का रास्ता अपनाया गया था। जिन क्षेत्रों में कम पूंजी में तत्काल अधिक मुनाफा कमाया जा सकता था वहां पूंजीपतियों को खुली छूट दी गई। बुनियादी ढांचा खड़ा करने के लिए 'पब्लिक सेक्टर' बनाया गया। मेहनती जनता ने खून-पसीना एक कर इस 'पब्लिक सेक्टर' को खड़ा किया। आजादी के 55 साल बाद आज यह साफ हो चुका कि इस 'पब्लिक सेक्टर' को लूटखसोट कर अपने हितों के लिए इस्तेमाल कर सरमायेदार मालामाल हो चुके हैं, जबकि मेहनतकश जनता आज भी फटेहाल ही है। आज भारत के पूंजीपति घरानों का सम्पत्ति साम्राज्य इतना विशाल हो गया है और उन्होंने अपने सामराजी आकाओं से ऐसा नापाक गठजोड़ किया है कि अब उन्हें पब्लिक सेक्टर की जरूरत ही नहीं रह गई है।

बैंकों का राष्ट्रीयकरण भी इसी उद्देश्य से किया गया था कि जनता की छोटी-छोटी बचतों को इकट्ठा कर उन्हें उद्योग-धंधों में लगाया जाये। पब्लिक सेक्टर के बैंकों से कर्ज लेकर उद्योगपति अपने उद्योगों का विस्तार करें। मुनाफे की हवस में पगलाये मुनाफाखोर इन बैंकों को कर्ज लेने के नाम पर लूटते रहे। आज स्थिति यह हो चुकी है कि एक लाख दस हजार करोड़ रुपये से भी अधिक की धनराशि को सरेआम ये उद्योगपति हड़प चुके हैं। यदि कोई आम आदमी बैंक का लाख-दो लाख कर्ज वापस न कर पाये तो उसके घर की नीलामी हो जायेगी और उसे हवालात की हवा खानी पड़ेगी। लेकिन इतनी बड़ी लूट के बाद उद्योगपतियों के चेहरों पर शिकन तक नहीं है। इनको दंडित करने की बात तो छोड़िये, भारत सरकार इन्हें सम्मानित करती है। एक ही उदाहरण इसके लिए काफी है। 'एस्सार' उद्योग समूह के प्रमुख शशि रुईया, प्रधानमंत्री के व्यापार और उद्योग संबंधी सलाहकार परिषद के सदस्य बने हुए हैं जबकि एस्सार समूह ने सात हज़ार करोड़ रुपये कर्ज लेकर हड़प लिये हैं।

इतनी बड़ी लूट के इस पूरे प्रकरण में एक बार फिर यह बात साबित हुई है कि भले ही लोकतंत्र की लाख दुहाई दी जाये, हकीकत यह है कि हिन्दुस्तान में पूंजीपतियों की तानाशाही है। सरकारें इन पूंजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी के तौर पर काम कर रही हैं। सारे क़ानून, पुलिस, फौज, न्यायालय पूंजीपतियों के हितों की रक्षा के लिये हैं। इनकी लूट के खिलाफ कहीं से कोई आवाज उठे तो उसे कुचल देने के लिए पूरी सरकारी मशीनरी तत्पर है।

एक पतित समाजवादी छलिये का नया स्वांग

(विशेष संवाददाता)

दिल्ली। मज़दूरों की पीठ में छुरा भोंकना, घिनौना अवसरवाद, नटों को भी मात देने वाला पैंतरापलट, बेहयाई और नये-नये स्वांग रचना भूतपूर्व समाजवादी और भाजपा की अगुवाई वाली केन्द्र सरकार के वर्तमान रक्षा मंत्री जार्ज फर्नांडीज के राजनीतिक कैरियर की विलक्षण विशेषता रही है। जैसे-जैसे आने वाले लोकसभा चुनावों की घड़ी करीब आती जा रही है वैसे-वैसे इन महोदय को एक बार फिर 'लोक' की चिन्ता बुरी तरह सताने लगी है। एक बार फिर राजनीतिक नट-करतब के इस उस्ताद ने एक नये पैंतरापलट की भूमिका रचनी शुरू कर दी है।

यह भूमिका जार्ज ने पिछले पांच जुलाई को रची। राजधानी दिल्ली के कांस्टीट्यूशन क्लब के हॉल में जार्ज ने एक गोष्ठी में अपनी सरकार की विनिवेश नीति (सरकारी प्रतिष्ठानों को निजी हाथों में बेचने की नीति) के खिलाफ जमकर गर्जन-तर्जन किया। कहाकि इससे बेरोजगारी बढ़ रही है। इस गोष्ठी का आयोजन जार्ज के बैठकखाने में पैदा हुई 'लोकमंच' नामक संस्था ने किया था। विषय था, रोजगार सृजन।'

इस गोष्ठी में जार्ज के भाषण के बारे में कई पूंजीवादी अखबारों के कलमघसीटों ने लिखा कि उन्होंने अपनी ट्रेड यूनियनबाजी के पुराने दिनों की याद दिला दी। कुछ अखबारों ने इस पर हैरत ज़रूर जाहिर की कि कैबिनेट की बैठकों में विनिवेश नीति के खिलाफ एक शब्द भी न बोलने वाले जार्ज के पेट में अचानक यह मरोड़ कैसे उठने लगी। जार्ज से हमदर्दी रखने वाले कुछ आशावादी कलमनवीसों ने अखबार के पन्नों पर यह दबी-दबी खुशी जाहिर की कि कुछ समय से भटक रही समाजवादी रुह जार्ज के शरीर में फिर से वापस आ गयी लगती है।

दरअसल, संसदीय राजनीति के 'वामपक्ष' से तलाक लेकर दक्षिण पक्ष की डोली में सवार होकर सत्ता के कीचड़ में लोट लगा लेने के एक अर्से बाद जार्ज 'लोक' के पक्ष में खड़े होकर इतना खुलकर बोले। गोष्ठी में जार्ज ने लोक प्रेम का इतना खुल्लम खुल्ला मुजाहिरा किया कि लोगों को शायद यह भ्रम हुआ होगा कि वह गोष्ठी कक्ष से उठकर सीधे जनता के पास चले जायेंगे। उन्होंने बड़ी मार्के की बात कही कि बेरोजगारी हमारे देश की सारी समस्याओं की जड़ है। आतंकवाद, उग्रवाद, नक्सलवाद जैसी सारी समस्याओं की जड़ में बेरोजगारी ही है, ऐसा उन्होंने कहा। लेकिन इस गर्मागर्म भाषण के बाद वह या तो अपने वातानुकूल घर पर या रक्षा मंत्रालय चले गये, क्योंकि वे जनता के बीच कहीं दिखायी नहीं दिये। यह भी हो सकता है कि वह सैनिकों का मनोबल बढ़ाने वाघा बार्डर चले गये हों क्योंकि वह कई बार यह दुहरा चुके हैं कि तहलका काण्ड के बाद सैनिकों का मनोबल काफी गिर गया है।

जो भी हो इतना तो तय है कि इस भूतपूर्व 'समाजवादी' की आत्मा फिलहाल काफी बेचैन है। बेचैनी इस बात से नहीं है कि सरकार की विनिवेश

नीति ने लाखों-लाख लोगों की रोजी-रोटी छीनकर सड़कों पर ला पटका है। अगर यह बेचैनी होती तो महोदय बेरोजगारों को साथ लेकर सड़कों पर संघर्ष करने की राह पकड़ते। असल वजह यह है कि सत्तारूढ़ गठबंधन से गांठ जोड़े रहना जार्ज के राजनीतिक भविष्य को अंधेरे में डुबोकर वनवास की राह दिखा सकता है। उन्हें चिन्ता यह है कि तहलका भण्डाफोड़ से मुंह पर जो कालिख पुती है उसे कैसे धोया जाये। साथ ही साढ़े तीन साल पूरे कर चुकी सरकार की नीतियों से तबाह जनता जब डेढ़ साल बाद नयी सरकार चुनेगी तो राजग से गांठ जोड़े रहने के कारण उन्हें व उनकी पार्टी को ठेंगा दिखा देगी। ऐसे में बेहतर है कि नये पैंतरापलट की भूमिका बनानी शुरू कर दी जाये। जब भी माकूल बहाना मिले शहीदी अंदाज में राजग सरकार की कुर्सी कुर्बान कर पुराने समाजवादी मुखौटे को पहन सड़क पर उतर लिया जाये। जार्ज के अचानक उमड़े 'लोकप्रेम' की असल वजह यही है।

जार्ज फर्नांडीज को यह पता है कि आम जनता की राजनीतिक याददाश्त इतनी अच्छी नहीं होती कि वह राजनीतिक चुनावबाजों की गद्दारियों के इतिहास को याद रख सके। लेकिन जार्ज को यह भी पता होना चाहिए कि आम जनता के बीच ऐसे लोग भी हैं जो 1974 की ऐतिहासिक रेल हड़ताल की गद्दारी भूले नहीं हैं। 1977 की जनता पार्टी सरकार में जब यह गद्दार उद्योगमंत्री बना तो हड़ताल के दौरान निकाले गये मज़दूरों को फिर से वापस लेने और उन पर मुकदमे खत्म करने की उम्मीद लोगों में जागी, लेकिन मंत्री महोदय ने ठेंगा दिखा दिया। फिर वी.पी. सिंह मंत्रिमण्डल में यह शख्स रेलमंत्री बना तब भी इसने लोगों की उम्मीदों से मुंह फेर लिया। इसके बाद राजग सरकार से नाता जोड़ने और बेहयाई-दर-बेहयाई के कारनामे सबको पता हैं।

आम जनता के बीच जानकार लोगों को यह भी पता है कि जार्ज फर्नांडीज जैसे पतित समाजवादियों की जमात मज़दूर आंदोलन के किन अन्तरराष्ट्रीय गद्दारों की औलादें हैं। ये दूसरे इण्टरनेशनल के काउत्सकी जैसे गद्दारों के वारिस हैं जिन्होंने प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान अन्धराष्ट्रवादी राग अलापते हुए यूरोप के मज़दूर वर्ग को अपने लुटेरे शासक पूंजीपतियों का साथ देने की नसीहत दी थी। गद्दार काउत्सकी के असली भारतीय चेले की तरह जार्ज ने इन दिनों पाकिस्तान के खिलाफ अंधराष्ट्रवादी जहर उगलने में भाजपाइयों को भी पीछे छोड़ दिया है। यह शख्स पतन के उस मुकाम पर पहुंच चुका है जहां से खड़े होकर वह गुजरात में हिन्दू कट्टरपंथियों द्वारा मुस्लिम औरतों से बलात्कार की वहशियाना घटनाओं पर कहता है कि ऐसा तो हर दंगों में होता है। इसमें नया क्या है। मजदूर वर्ग को ऐसे गद्दारों, सड़कर बजबजा रहे पतित समाजवादियों और सभी चुनावी छलियों की गन्दी कारगुजारियों के इतिहास को हर-हमेशा याद रखना चाहिए। कभी न भूलना चाहिए।

जनता की छाती पर पहाड़ बनकर लदा है दुनिया का सबसे बड़ा जनतंत्र

दुनिया के सबसे बड़े जनतंत्र की आज़ादी का 55वीं वर्षगांठ की तैयारियां शुरू हो गई हैं। जश्न-आजादी का दिन अब हमारे सिर पर है, इस बात को रेडियो, अखबार, टीवी के माध्यम से लगातार सरकार याद दिला रही है। मीडिया में विज्ञापनों पर करोड़ो रुपये 15 अगस्त की याद दिलाने के लिए खर्च किये जा रहे हैं। हालांकि यह दिन अब महज एक राष्ट्रीय कवायद का दिन बनकर रह गया है। सरकारी दफ्तरों में मुरझाए-सुरझाए, गुबरैलों जैसे लुढ़कते-पड़ते, खाते-पीते लोग भी डंडे के इर्द-गिर्द कसरत-मशक्कत करके जन गण मन कुछ कर लेते हों लेकिन देश जिनके बलशाली कंधों पर टिका है, जिन लोगों ने अपने कर्मठ हाथों पर इस पूरे समाज को उठा रखा है उनके लिए इस आजादी का कोई मतलब नहीं है।

आखिर हो भी तो कैसे? जिनका बच्चा पैदा होते ही विदेशियों के हजारों रुपयों का कर्जदार हो जाता हो, जिनकी पत्नियां बच्चा जनते वक्त ही मौत के मुंह में चली जाती हों, जिनके बच्चे कुपोषण से अपंग हो जाते हों, जिनके पढ़ने के लिए अब सरकारी स्कूलों के भी दरवाजे बंद होने लगे हैं सारे अच्छे स्कूलों के दरवाजे तो पहले से ही बंद थे। जिनकी अभी मसें भी ठीक से नहीं भीगी होती हैं वो फैक्ट्रियों में 18-18, 36-36 घंटे मर-खप रहे हैं।

इन्हीं गरीबों-मेहनतकशों के खूनपसीने के दम पर खड़ी इस देश की संसद विधानसभाओं, इन सुअरबाड़ों में बैठने वाले नेताओं का प्रतिदिन का खर्च करोड़ों रुपये में आता है। इसको पुष्ट करने के लिए थोड़े से आंकड़े और तथ्य ही काफी हैं। यह जनतंत्र-लोकतंत्र कितना खर्चीला है शायद आपको इसका ठीक से अनुमान न हो। एक तरफ तो इन नेताओं की आपसी कुत्ता-घसीटी में करोड़ों-करोड़ रुपयों प्रतिदिन खर्च होता है और दूसरी तरफ सरकार कहती है कि देश के पास आर्थिक स्रोत-संसाधनों की कमी है।

एक उदाहरण के हवाले से बात शुरू करना ठीक रहेगा। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान महात्मा गांधी ने 2 मार्च 1930 को तत्कालीन वायसराय को लिखे एक पत्र में बताया कि ब्रिटिश शासन दुनिया की सबसे महंगी व्यवस्था है और लिखा कि देश के वायसराय की तनख्वाह 21,000 रुपये से अधिक पड़ती है, भत्ते आदि अलग से, मतलब 700 रुपया प्रतिदिन लेकिन भारत की प्रति व्यक्ति आय प्रतिदिन 2 आने है। इस प्रकार यह भारत के प्रति व्यक्ति आय से 5000 गुना अधिक है।

गांधी द्वारा उठाये गये इस सवाल की कसौटी पर हम आज के भारत की संसदीय प्रणाली को कसते हैं तो यह औपनिवेशिक शासन से कई गुना महंगी पड़ती है। औसत भारतीय की दैनिकआय आज लगभग 29 रुपये पचास पैसे प्रतिदिन की है। लेकिन दूसरी तरफ देश के राष्ट्रपति के ऊपर प्रतिदिन 4लाख 14 हजार रुपये खर्च होते हैं। यह प्रति व्यक्ति प्रतिदिन की आय से 14,033 गुना अधिक है। इसी तरह प्रधानमंत्री कार्यालय का खर्च प्रतिदिन 2 लाख 38 हजार रुपये है जो प्रतिव्यक्ति आय से 7,794 गुना ज्यादा है। जूता फेंकने, गाली-गलौज करने, देश की जनता के खूनके एक-एक बूंद को चूस लेने के लिए बनने वाले कानूनों पर प्रतिदिन केन्द्रीय मंत्रिमंडल के ऊपर15 लाख रुपये खर्च होते है।

और आगे बढ़ें। संसद की एक घंटे की कार्यवाही में लगभग 16 लाख रुपये खर्च होते हैं। उत्तरप्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार की विधानसभाओं की कार्यवाही चलने में प्रतिदिन क्रमश:14 लाख ,13 लाख, 11 लाख व 12 लाख खर्च होते हैं।एक बार जब 13 दिनों तक हंगामें, शोर-शराबे, जूतम-पैजार के कारण संसद की कार्यवाही अस्त व्यस्त रही तो उसमें लगभग 15 करोड़ रुपये बर्बाद हुए।

अभी घबराइये नहीं, अरे ये तो संसद का खर्च है। अब आइए देश की बदहाली से 'तबाह-बर्बाद' हो चुके कटोराबाज सांसदों- विधायकों का वेतन भत्ता देखें। अभी तक जितना मिलता था उसमें इनको इधर-उधर मुंह मारना पड़ता था। इसीलिए कुछ महीने पहले सर्वसम्मति से केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने लोकसभा-राज्यसभा के सदस्यों के वेतनभत्तों में तिगुनी वृद्धि कर दी। नकद के रूप में जो वेतन भत्ते आदि की रकम सांसदों को मिलती है वह कुल लगभग 35,000 रुपये मासिक हो गई है। नकद के अलावा हवाई जहाज से सफर, इलाज मुफ्त, टेलीफोन मुफ्त, मकान व अन्य सुविधाओं का हिसाब जोड़ा जाय तो प्रति महीने प्रति सांसद के पीछे जनता की गाढ़ी कमाई का करीब 1 लाख रुपया खर्च होता है। इसी के आस-पास का वेतनभत्ता राज्यों के कटोराछाप विधायकों का भी है।

पिछले बजट के अनुसार विशिष्ट व्यक्तियों की सुरक्षा पर 1 अरब 61 करोड़ रुपया खर्च होता है। यह सिर्फ विशेष सुरक्षा गार्ड (एसपीजी) और राष्ट्रीय सुरक्षा गार्ड (एनसीजी) सुरक्षा दस्तों का खर्च है। वाहन आदि का खर्च अलग से। मंत्रिपरिषद की सुरक्षा पर 50 करोड़ 52 लाख खर्च होता है। सोचने की बात है कि जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों को आखिर खतरा किससे है? कहीं 'अपनी जनता' से ही तो नहीं?

ध्यान रहे कि हम भारतीय जनतंत्र के जिन खर्चों की बात कर रहे हैं, वह चुने हुए 'जन प्रतिनिधियों' पर होनेवाला खर्च है। विराट नौकरशाही तंत्र पर, पुलिस विभाग और अर्द्धसैनिक बलों पर तथा फौजी मशीनरी पर सालाना खर्च खरबों खरब रुपयों का है, जो घोर अनुत्पादक होता है, वह इससे अलग है।

दूसरी तरफ सांसद विधायक जिनके प्रतिनिधि हैं उनमें से आधी आबादी को दो वक्त का भोजन तक ठीक से नसीब नहीं होता है। देश के कई हिस्सों में भूख से मौतें हो रही हैं। एक ओर जहां प्राकृतिक आपदाओं की मार झेलती आम जनता गर्मी में लूट से सूखे में व भूकंप में मरती रहती है वहीं तथाकथित नेता अपने भूकंपरोधी आलीशान महलों के एयरकंडीशन्ड सुविधा सम्पन्न कमरों में बैठकर तमाशा देखते रहते हैं। मुनाफे की हवस में खत्म किये जा रहे प्राकृतिक संसाधन और महंगाई से तबाह होती खेती किसानी के कारण भूख-बेकारी-गरीबी दिनों दिन बढ़ रही है। खाद पानी बीज के महंगा होने से, धीरे-धीरे सभी सब्सिडियों के खत्म होते जाने से गांवों की हालत दिनों दिन बदत्तर होती जा रही है।

वहीं दूसरी ओर गांव-देहातों से उजड़कर आ रहे किसानों मजदूरों को, महानगरों में फैक्ट्रियों में हो रही छंटनी तालाबंदी के कारण काम भी नहीं मिल रहा है। सरकार रोजगार देना तो दूर, सभी सार्वजनिक क्षेत्र के छोटे-बड़े उद्योगों को ठेके पर दे रही है। सरकार का कहना है कि इन क्षेत्रों के लिए उसके पास पैसा नहीं है।

साथियों, ये है हमारे जनतंत्र-लोकतंत्र के 55 साल बीतने के बाद चौराहे पर खड़ी नंगी तस्वीर, जिससे हम रूबरू हो रहे हैं। सारे जनकल्याण और जनता कीसरकार के सभी मुखौटे उतर जाने के बाद का रूप। इस वास्तविक स्थिति को जानने समझने के बाद ये कहना गलत न होगा कि 1947 से आज तक नेता, नौकरशाह, पूंजीपति हुए मालामाल; मेहनतकश, मज़दूर, किसान हुए बदहाल। आखिर इस नई गुलामी के खिलाफ, जो देशी विदेशी मुनाफाखोरों के द्वारा लादी गई हैं, मुक्ति दिलाने कौन आयेगा? 55 साल बहुत होते हैं देखने समझने के लिए। काफी तसल्लीबख्श ढंग से हम लोगों ने इस आजादी के बाद से तीन पीढ़ियां तबाह हो चुकी हैं। क्या अब हम अपनी अगली पीढ़ी को भीअपनी ही नियति पर, इन्हीं चुनावी भूजाछोर-कटोराबाज मदारियों के ऊपर छोड़ दें?

नहीं साथियों, हम लोगों को जनता की अपनी आने वाली पीढ़ी की सच्ची आजादी के लिए फिर एक बार इन काले अंग्रेजों के खिलाफ एकजुट होकर लड़ना ही होगा। क्योंकि दूसरे सभी रास्ते बंद हो चुके हैं। हम लोगों के सामने एक ही विकल्प है कि पूरे देश की ग़रीब बदहाल आबादी एकजुट होकर मेहनतकशों की लूट पर टिकी इस व्यवस्था को उखाड़ फेंके और यह संभव है सिर्फ और सिर्फ मेहनतकश इंकलाब के जरिये।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
संपादक मण्डल : डा. दूधनाथ, मुकुल। सम्पादकीय पता : 69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006, सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ।